पी. रामा चंद्र राव

बनाम

कर्नाटक राज्य

अप्रैल 16,2002

(एस. पी. भरुचा, सीजे, सैयद शाह मोहम्मद कादरी , आर. सी. लाहोटी, एन. संतोश हेगड़े, दोराईस्वामी राजू, रूमा पाल और अरिजीत पसायत, जे. जे।]

भारत का संविधान, 1950-अनुच्छेद 21-त्वरित सुनवाई का अधिकार-आपराधिक कार्यवाही-भारत भारत की छोटी पीठों के निर्णय द्वारा प्रदान की गई परिसीमा प्रतिबंध। उच्चतम न्यायालय - अभिनिर्धारित, अंतुले के मामले में बड़ी पीठ द्वारा निर्धारित कानून के विपरीत ऐसा प्रतिबंध - परिसीमा प्रतिबंध अच्छा कानून नहीं है, क्योंकि यह अस्वीकार्य कानून होगा और पूर्ववर्ती कानून के विपरीत होगा-त्वरित सुनवाई के अधिकार को प्रभावी बनाने के लिए , दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 309,311,258 और 482 और संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अन्तर्गत शक्तियों का प्रयोग किया जा सकता है-दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 309,311,258 और 482।

सिद्धांतः

पूर्ववर्ती सिद्धांत-बड़ी पीठ द्वारा निर्धारित कानून के विपरीत छोटी पीठों द्वारा उद्घोषणाएं - पीठ बड़ी पीठ द्वारा व्यक्त किए गए विचार से बाध्य है।

न्यायिक समीक्षाः

अभिनिर्धारित, कानून की घोषणा और व्याख्या करने और स्पष्ट खामियों को हटाने और अंतर को दूर करने तक सीमित है-कानून के क्षेत्र में प्रवेश करने के लिए नहीं, जो कि विधायिका के के लिए है -भारत का संविधान ,-1950-अनुच्छेद 32,21,141,142-दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-अध्याय XXXVI।

कॉमन कॉज बनाम भारत संघ , [1996] 4 एस. सी. सी. 33, (*कॉमन कॉज* I); *कॉमन कॉज बनाम भारत संघ*, [1996] 6 एस. सी. सी. 775 (*कॉमन कॉज* II); *राजदेव शर्मा बनाम बिहार राज्य*, [1998] 7 एस. सी. सी. (राज देव शर्मा I); राज देव शर्मा II बनाम बिहार राज्य, [1999] 7 एस. सी. सी. 604 (राज देव शर्मा II), न्यायालय ने कुछ प्रकृति की आपराधिक कार्यवाहियों के निष्कर्ष के लिए बाहरी समय सीमा निर्धारित करने का निर्देश जारी किया किया था।

मौजूदा अपीलों में भ्रष्टाचार के आरोपों का सामना कर रहे अभियुक्तों को राज देव शर्मा प्रथम मामले में दिए गए निर्देशों के संदर्भ में विशेष अदालतों द्वारा बरी कर दिया गया , क्योंकि आरोप तय होने की तारीख से दो साल बीत जाने के बावजूद विचारण प्रारम्भ करने में विफलता हुई हुई थी। दोषमुक्ति के विरूद्ध की गई राज्य की अपीलों को उच्च न्यायालय द्वारा संबंधित को नोटिस जारी किए बिना ही स्वीकार कर लिया गया था।

इस न्यायालय में अपील में, विचार के लिए प्रश्न उत्पन्न हुआ कि क्या इस न्यायालय के *कॉमन कॉज* I, *कॉमन कॉज* II, *राज देव शर्मा* I राज देव शर्मा II में दिए गए पहले के निर्णय

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 और अन्य आर्थिक अपराधों के अन्तर्गत अभियोजन पर लागू होंगे। इसलिए इस मामले को संविधान पीठ के पास सन्दर्भित किया गया।

सुनवाई के दौरान, संविधान पीठ की राय थी कि *कॉमन कॉज* मामलों और *राज देव शर्मा* मामलों में निर्देश *ए. आर. अंतुले* के मामले में संविधान पीठ के द्वारा पारित किए गए निर्देशों के विपरीत थे, जिसमें यह कानून निर्धारित किया गया था कि सभी आपराधिक कार्यवाही के समापन समापन के लिए एक बाहरी समय सीमा तय या निर्धारित नहीं की जाना चाहिए। चूंकि ए . आर. अंतुले के मामले को 5 न्यायाधीशों की पीठ द्वारा निर्णीत किया गया था, इसलिए मौजूदा मामले को सात न्यायाधीशों की पीठ को सन्दर्भित किया गया था।

इसमें विचार के लिए प्रश्न यह था कि क्या कोई न्यायालय अपने उत्साह में किसी एक एक अभियुक्त के त्वरित विचारण के अधिकार की रक्षा करने के लिए , इस तरह के प्रतिबंधों को तैयार कर सकता है और लगभग लागू कर सकती हैं, हालांकि विधायिका और कानूनों ने ऐसा करना करना नहीं चुना है।

प्रश्न का उत्तर देते हुए और अपीलों को अनुमति देते हुए , न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है (द्वारा न्यायमूर्तिगण लाहोटी , जे स्वयं अपने लिए एस . पी. भरुचा, सीजेआई, कादरी, हेगड़े, रूमा पाल और पसायत, जी)

1.1 . यह न तो उचित है और न ही व्यवहार्य है , और न ही न्यायिक रूप से अनुमन्य है कि सभी आपराधिक कार्यवाहियों के समापन के लिए एक बाहरी सीमा तय अथवा निर्धारित की जाए। *कॉमन कॉज* (I), *राज देव शर्मा* (I) *और राज देव शर्मा* (II) में निर्धारित समय-सीमाएं अपना परिसीमा प्रतिबन्ध को इस तरह से निर्धारित अथवा तय नहीं किया जा सकता था और ये अच्छा कानून नहीं हैं। कॉमन कॉज (I), राज देव शर्मा मामले (I) और (II) में दिए गए निर्देशों के अनुसार , मात्र परिसीमा अवधि समाप्त होने के कारण मुकदमे या आपराधिक कार्यवाही को समाप्त करने के लिए आपराधिक न्यायालय बाध्य नहीं है। उन निर्णयों में अधिक से अधिक निर्धारित समय की अवधि मुकदमे या कार्यवाही करने वाले न्यायालयों द्वारा अनुस्मारक के रूप में प्रयोग करने के लिए ली जा सकती है जब उन्हें उनके सामने मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर अपने न्यायिक मस्तिष्क को लागू करने किया जा सकता है और कई प्रासंगिक कारकों को ध्यान में रखते हुए निर्धारित किया जा सकता है जैसा कि ए. आर. अत्तुले के मामले में इंगित किया गया है तथा तय करें कि कहीं मुकदमा या कार्यवाही इतनी अत्यधिक विलंबित तो नहीं हो नहीं हो गई है कि उसे दमनकारी और अनुचित कहा जाए। उक्त समयसीमा की किसी भी न्यायालय न्यायालय द्वारा अपने आप ही मुकदमे या कार्यवाहियों को आगे जारी रखने के लिए एक बाधा के रूप में लिया जाएगा और अनिवार्य रूप से न्यायालय को उसे समाप्त करने और अभियुक्त को बरी करने या दोषमुक्त करने के लिए बाध्य माना जाएगा।

[84 - एफ, जी, एच; 85-ए]

1.2. परिसीमा की अवधि निर्धारित करना जिसके अंत में विचारण न्यायालय कार्यवाही कार्यवाही को समाप्त करने और आवश्यक रूप से अभियुक्त को बरी या आरोपमुक्त करने के लिए बाध्य होगा और आगे , ऐसे निर्देश वर्तमान और भविष्य के सभी मामलों में लागू करना कानून बनाने के बराबर हैं, जो न्यायिक निर्देशों द्वारा और संवैधानिक न्यायालयों द्वारा न्यायिक कानून

पारित किए जाने की शक्ति के अन्तर्गत नहीं किए जा सकते हैं , हालांकि संविधान के अनुच्छेद 32,21,141 और 142 की उदार (liberal) व्याख्या की जा सकती है। न्यायालय कानून की घोषणा कर सकते हैं, वे कानून की व्याख्या कर सकते हैं , वे स्पष्ट खामियों को दूर कर सकते हैं और कमियों को भर सकते हैं लेकिन वे विधायिका के क्षेत्र में प्रवेश नहीं कर सकते हैं , जोकि केवल विधायिक के के लिए ही नियत है। न्यायपालिका, विधायिका की तरह, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के अध्याय XXVI XXVI के समान या उसके अनुरूप कोई प्रावधान लागू नहीं कर सकती है।
[82 - एफ, जी, एच; 83-ए-बी]

1.3. *कॉमन कॉज (I), कॉमन कॉज (II) राज देव शर्मा (I)* और *राज देव शर्मा (II) में अधिनियमित परिसीमा प्रतिबंध*को इसलिए भी कायम नहीं रखा जा सकता क्योंकि दो दो या तीन न्यायाधीशों की पीठ के निर्णय *ए. आर. अंतुले* के मामले में संविधान पीठ के आदेश के विपरीत हैं और इसलिए उन्हें उस सीमा तक अच्छा कानून नहीं कहा जा सकता है जिस सीमा तक वे पूर्ववर्ती सिद्धांत का उल्लंघन कर रहे हैं। नजीरों का सुस्थापित सिद्धांत जो विधि नियम में परिवर्तित हो गया है , वह यह है कि कम संख्या वाली पीठ अधिक संख्या वाली पीठ द्वारा व्यक्त किए गए विचार से बाध्य होती है और उनके द्वारा व्यक्त किए गए विचारों से परे या विरोध में कोई विचार व्यक्त नहीं कर सकती है।[83 - बी, सी]

1.4. *ए. आर. अंतुले* के मामले का आदेश सही है और अभी भी बरकरार है। संविधान के अनुच्छेद 21 से उभरते हुए प्रस्ताव और त्वरित सुनवाई के अधिकार की व्याख्या करते हुए मामले में दिशानिर्देशों के रूप में निर्धारित किया है , त्वरित सुनवाई के अधिकार का पर्याप्त रूप से ध्यान रखा गया है। दिशा-निर्देश संपूर्ण नहीं हैं , अपितु मात्र उदाहरणात्मक हैं। वे कठोर और तेज़ नियमों के रूप में लागू करने के लिए या एक स्ट्रेट-जैकेट सूत्र की तरह लागू करने के लिए अभिप्रेत नहीं हैं। हैं। उनकी प्रयोज्यता प्रत्येक मामले की तथ्य -स्थिति पर निर्भर करेगी। सभी स्थितियों का पूर्वानुमान लगाना मुश्किल है और कोई सामान्यीकरण नहीं किया जा सकता है। [84 - सी, डी, ई,]

अब्दुल रहमान अंतुले बनाम आर. एस. नायक और अन्य, [1992] 1 एससीसी 225, की पुष्टि की गई।

कॉमन कॉज बनाम भारत संघ, [1996] 4 एस. सी. सी. 33; *कॉमन कॉज बनाम भारत संघ*, [1996] 6 एस. सी. सी. 775; *राज देव शर्मा बनाम बिहार राज्य*, [1998] 7 एस. सी. सी. 507 और *राज देव शर्मा बनाम बिहार राज्य* , [1999] 7 एस. सी. सी. 604, को खारिज कर दिया।

मेनका गांधी बनाम भारत संघ और अन्य, [1978] 1 एस. सी. सी. 248; *हुसैनारा खातून और अन्य, (I) बनाम गृह सचिव, बिहार राज्य*, [1980] 1 एस. सी. सी. 81 और *करतार सिंह बनाम पंजाब राज्य* [1994] 3 एस. सी. सी. 569, *संदर्भित*

'न्यायशास्त्र के सिद्धांत 'सैल्मंड द्वारा 12वां संस्करण; न्यायिक सक्रियता और प्रोफेसर विलियम वेड क्यू सी. द्वारा 'भारत में संवैधानिक लोकतंत्र'; पैट्रिक डेवलिन द्वारा 'द जज (1979); प्रोफेसर एस. पी. साठे द्वारा' भारत में न्यायिक सक्रियता-सीमाओं का उल्लंघन और सीमाओं को लागू करना, संदर्भित।

2. आपराधिक न्यायालयों को अपनी उपलब्ध शक्तियों का प्रयोग करना चाहिए, जैसे- त्वरित विचारण के अधिकार को प्रभावी बनाने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 309,311 और 258 के तहत दी गई है। एक सतर्क और मेहनती विचारण न्यायाधीश किसी भी दिशानिर्देश की तुलना में इस तरह के अधिकार का बेहतर रक्षक साबित हो सकता है। उचित मामलों में संविधान की की धारा 482 Cr.P.C और अनुच्छेद 226 और 227 के तहत उच्च न्यायालय की अधिकारिता को उचित राहत या उपयुक्त निर्देश प्राप्त करने के लिए लागू किया जा सकता है। 85 - बी, सी]

3. मुकदमे में देरी के कारण और निष्कर्ष की धारणा आपराधिक कार्यवाही में आवश्यक है ताकि यह पता लगाया जा सके कि क्या मुकदमे या कार्यवाही को समाप्त करने वाली सीमा के प्रतिबंध की स्थापना को उचित ठहराया जा सकता है। त्वरित न्याय के लक्ष्य को विधानमंडल , न्यायपालिका, कार्यपालिका और बार के सदस्यों के प्रतिनिधि निकायों की ओर से एक संयुक्त और परिणाम-उन्मुख सामूहिक सोच और कार्रवाई द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। [77 - ई; 79-सी]

अब्दुल रहमान अंतुले और अन्य बनाम आर. एस. नायक और *अन्य,* [1992] 1 एससीसी 225; *करतार* सिंह बनाम पंजाब राज्य, [1994] 4 एस. सी. सी. 569 और *राज देव शर्मा // बनाम बिहार राज्य,* [1999] 7 एस. सी. सी. 604, संदर्भित।

न्यायपालिका पर मानव शक्ति योजना पर भारतीय विधि आयोग की 120वी रिपोर्ट, संदर्भित।

4. भारत संघ और राज्य सरकार को उनके न्यायपालिका को मजबूत करने के संवैधानिक दायित्व को मात्रात्मक और गुणात्मक रूप से आवश्यक धन , श्रमशक्ति और बुनियादी ढांचा प्रदान करके पूर्ण करना चाहिए।

[85 - डी]

5. उच्च न्यायालय अपील दायर करने में देरी को माफ नहीं कर सकता था और फिर संबंधित अभियुक्त/प्रत्यर्थी को उच्च न्यायालय के समक्ष नोटिस किए बिना अपीलों को स्वीकार नहीं कर सकता था। अब उच्च न्यायालय अभियुक्त / प्रत्यर्थी को उसके समक्ष प्रत्येक मामले में नोटिस करने के बाद नए सिरे से अपीलों को पुनः सुनेगा और मौजूदा मामले में निर्धारित कानून के के सिद्धांतों के साथ सुसंगतता रखते हुए निर्णय लेगा।

[85 - एफ]

राजू, जे. (उच्चतम न्यायालय की शक्तियाें और अधिकार क्षेत्र के सम्बन्ध में टिप्पणियों से आंशिक रूप से असहमति)

1. *ए. आर. अंतुले* के मामले में कानून की घोषणा अभी भी बरकरार है और इसकी बाध्यकारी शक्ति और अधिकार को किसी बड़ी पीठ के किसी अन्य निर्णय द्वारा किसी भी तरह से परिवर्तित नहीं किया गया है। परिणामतः , कम संख्या में न्यायाधीशों के संविधान वाली पीठें , जिन्होंने मामलों को निपटाया था , *ए. आर. अंतुले* के मामले में निर्धारित निर्णय के कारण के अवमूल्यन में, या तो विस्तार के माध्यम से , स्पष्टीकरण या उसमें विचार किए गए कारणों की प्रकृति या उन सम्भावित परिणामों के संदर्भ में अंतर करने की कोशिश करने की प्रक्रिया में कोई सिद्धान्त निर्धारित नहीं कर सकती थी और जो उनके विचार में टालने योग्य हैं। यहां तक कि जहां इसके लिए आवश्यकताएं या औचित्य, यदि कोई हो , पाए गए, वहां भी बाध्यकारी पूर्ववर्तियों के

सिद्धांत का उल्लंघन करने के लिए ऐसी स्वतंत्रताओं को लेने की गुंजाइश नहीं हो सकती थी। कम संख्या वाली पीठ द्वारा लिए गए निर्णयों को रद्द करने के लिए यह एकमात्र कारण ही पर्याप्त इससे भी अधिक जब कि *ए. आर. अंतुले* के मामले में निर्णय की शुद्धता पर संदेह करने का कोई कारण नहीं है और यह पीठ उसमें निर्धारित सिद्धांतों से सहमत है।[87 - बी-एफ]

अब्दुल रहमान अंतुले बनाम आर . एस. नायक एवं अन्य , [1992] 1 एस. सी. सी. 225 की पुष्टि की।

कॉमन कॉज बनाम भारत संघ , [1996] 4 एस. सी. सी. 33;कॉमन कॉज बनाम भारत संघ, [1996] 6 एस. सी. सी. 775; राज देव शर्मा बनाम बिहार राज्य, [1998] 7 एस. सी. सी. 507 और राज देव शर्मा बनाम बिहार राज्य, [1999] 7 एस. सी. सी. 604, खारिज कर दिये।

2. यद्यपि यह न्यायालय स्वयं को इम्पेरियल इन इम्परों नहीं मानता है या 'राज्य' की एक निरंकुश शाखा के रूप में कार्य करेगा , तथ्य यह है कि संविधान के संस्थापकों ने जानबूझकर और विचारपूर्वक, किसी भी क्षेत्राधिकार को लागू करने की परिकल्पना नहीं की थी , सिवाय भारत के संविधान के अनुच्छेद 363 के, जो इसकी शक्तियों की गम्भीरता और आयाम या सीमा की पहचान करने के लिए महत्वपूर्ण और पर्याप्त है। यह न्यायालय राष्ट्रीय स्तर पर सभी न्यायिक शक्तियों परम भंडार है क्योंकि यह देश में न्याय प्रशासन के चरम पर अग्र न्यायालय है और भारत के संविधान के समर्थक और अंतिम व्याख्याकार और 'कानून के शासन' के मूल सिद्धांतों के रक्षक के रूप में है। [87 - जी-एच; 88-सी]

3. उपलब्ध प्रक्रियात्मक राहत के भीतर भी त्वरित परीक्षण के वांछित उद्देश्य को प्राप्त करने की संभावनाएं और गुंजाइश का संकेत *ए. आर. अंतुले* के मामले में निर्णय के साथ -साथ वर्तमान मामले में मुख्य निर्णय में भी दिया गया है। इस न्यायालय को कभी भी किसी भी क्षेत्र में या किसी मामले के संबंध में या किसी एक प्राधिकरण या व्यक्ति पर अपने अधिकार क्षेत्र को अस्वीकार करने का साहस नहीं करना चाहिए , जब संविधान खतरे में पाया जाता है और नागरिकों/ व्यक्तियों के मौलिक अधिकारों पर हमला किया जाता है , तो उन्हें अपने पद पर बहाल करने और संविधान और कानून के शासन को बनाए रखने के लिए, जिसके लिए इस न्यायालय की स्थापना और गठन किया गया है , जिसमें व्यक्त और निहित दोनों प्राथमिक और माध्यमिक शक्तियां, अधिकार और क्षेत्राधिकार शामिल हैं।[88 - जी, एच; 89-ए]

अब्दुल रहमान अंतुले बनाम आर. एस. नायक एवं अन्य, [1992] 1 एस. सी. सी 225, संदर्भित।

आपराधिक अपील न्यायनिर्णयः आपराधिक अपील सं 535/2000 ।

आपराधिक अपील सं 693/ 1999 में कर्नाटक उच्च न्यायालय के निर्णय और आदेश दिनांकित 13.10.99 से

सहित

आ. अ. सं. 536 , 537 , 538 , 539 , 540 , 541 और 542 सन् 2000।

भारत के अतिरिक्त अटॉर्नी जनरल आर . एन. त्रिवेदी, अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल, सुबोध मार्कण्डेय, पराग पी. त्रिपाठी, रंजीत कुमार, पी. परमेश्वरन, भारत के अटॉर्नी जनरल के लिए मनीष सिंघवी, सुश्री बीनू टम्टा, वरुण गोस्वामी, एस. मुरलीधर, एस. वल्लीनायगम, श्रेयस जैसिम्हा,

जैसिम्हा, वी. बी. जोशी, पवी किनी, ए. वी. एल. राम प्रसाद वर्मा, ए. पी. सिंह सुश्री उमंग दारा, निखिल नय्यर, उर्मिला सिरूर, संजय आर. हेगडे, सत्य मित्रा, सुश्री प्रिया हेगड़े, विक्रांत यादवा, ए. मरियरपुथम, अरुणा माथुर, जी. प्रभाकर, (एन. पी.), एच. वाही, रंजन मुखर्जी, सुश्री रचना श्रीवास्तव, रवींद्र श्रीवास्तव छत्तीसगढ़ के लिए, प्रकाश श्रीवास्तव, अनिल कुमार झा, श्रीमती अलका झा, ताराचंद्र शर्मा, राजदेव शर्मा, सुश्री नीलम शर्मा, अजय शर्मा, रुपेश कुमार, रमेश बाबू एम. आर., अशोक पोत्शागबाम, के. एच. नोबिन सिंह, इंदरबीर सिंह अलग, राजीव शर्मा, आर. पी. गोयल यू. पी. के लिए सुश्री चित्रा मार्कंडेय, सुश्री फिरोजा बानो, सुश्री विभा दत्ता मखीजा, सुश्री भारती भारती त्यागी, रोहित कुमार सिंह एस. के. अग्निहोत्री, एस. एस. शिंदे एस. वी. देशपांडे, सुश्री कृष्णा कृष्णा शर्मा, सुश्री आशा जी. नायर, वी. के. सिदथारन, सुश्री ए. सुभाशिनी, जे. एम. खन्ना और गुंटूर प्रभाकर उपस्थित पक्षों के लिए।

न्यायालय के निर्णय न्यायमूर्ति, **आर. सी. लोहाटी** ने सुनाये.

संविधान के अनुच्छेद 21 में घोषित कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अलावा किसी भी व्यक्ति व्यक्ति को उसके जीवन या उसकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जाएगा। जीवन और स्वतंत्रता, संविधान के संस्थापकों द्वारा अनुच्छेद 21 को आकार देने में प्रयुक्त शब्द, शब्दकोशों तय किए गए अर्थ में संकीर्ण रूप से नहीं पढ़े जाने चाहिए ; वे सार्थक रूप से समझे जाने वाले जैविक शब्द हैं। इसकी व्याख्या शुरू करते हुए, प्रस्तावना की मर्मस्पर्शी भावना को महसूस करते हुए, राज्य के नीति निदेशक सिद्धांतों से शक्ति प्राप्त करते हुए और अपने संवैधानिक दायित्व के प्रति सचेत रहते हुए, न्यायालयों ने अनुच्छेद 21 को अपनी बाहों को उतना फैलाने की अनुमति दी है जितना वह वैध रूप से कर सकता है। आपराधिक कानून में आगे बढ़ने वाले व्यक्ति को मानसिक पीड़ा, खर्च और तनाव से गुजरना पड़ता है और उसके साथ देरी के परिणामस्वरूप अभियुक्त की खुद का बचाव करने की सक्षमता या क्षमता क्षीण हो सकती है , जिसने देश की संवैधानिक अदालतों को इस पर रोक लगाने के लिए राजी किया है। त्वरित सुनवाई का अधिकार अनुच्छेद 21 में निहित निष्पक्ष, न्यायसंगत और उचित प्रक्रिया की अभिव्यक्ति है। त्वरित सुनवाई, फिर से, अन्वेषण, जांच, परीक्षण, अपील, पुनरीक्षण और पुन: परीक्षण सहित इसके सभी चरणों को संक्षेप में शामिल करेगी। यह सभी एक आरोप से प्रारम्भ होकर और अंतिम फैसले के साथ समाप्त होगा, ये दोनों क्रमशः उस यात्रा का टर्मिनस ए क्वो और टर्मिनस एड क्वेम हैं, जो एक अभियुक्त को एक निहितार्थ का सामना करने के बाद अनिवार्य रूप से करना चाहिए। त्वरित सुनवाई के अधिकार के रूप में प्रतिपादित संवैधानिक दर्शन की उम्र भले ही लगभग ढाई दशक हो गई है , लेकिन जिस लक्ष्य को हासिल करने की कोशिश की जा रही है , वह अभी भी बहुत दूर है। असंख्य तथ्य - स्थितियाँ, अभियोजन एजेंसियों और कार्यपालिका की ओर से कार्रवाई करने में विफलता के कारण अभियुक्त व्यक्तियों को ऐसे मौलिक अधिकार से वंचित करने की गवाही देती हैं, और संविधान के

अनुच्छेद 21 के शीघ्र और त्वरित सुनवाई के आदेश को सुनिश्चित करने में लगभग उनके द्वारा आंखे मूंद लेने में इस न्यायालय को ऐसे समाधान तैयार करने के लिए प्रेरित किया है जो न्यायिक फैसले द्वारा लगभग परिसीमा के प्रतिन्ध को लागू करने की हद तक जाते हैं जिसके आगे आगे नहीं बढ़ पाएगा और कानून का हाथ अपनी पकड़ खो देगा। किसी अभियुक्त के शीघ्र मुकदमे की सुनवाई के अधिकार की रक्षा करने के अपने उत्साह में , क्या न्यायालय ऐसी परिसीमाओं को तैयार कर सकता है और लगभग अधिनियमित कर सकता है हालांकि विधायिका और क़ानून ने ऐसा ऐसा करने का विकल्प नहीं चुना है। यह दूरगामी प्रभाव का प्रश्न है जिसके कारणसात न्यायाधीशों की क्षमता वाली इस पीठ का गठन हुआ है।

आपराधिक अपील संख्या 535/2000 में अपीलकर्ता मैंगलोर सिटी कॉर्पोरेशन में विद्युत अधीक्षक के रूप में कार्यरत था। चेक अवधि 1.5.1961 से 25.8.1987 के दौरान उनके पास आय के के ज्ञात स्रोतों से अधिक संपत्ति अर्जित करने की जानकारी मिली।भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम , 1988 की धारा 13(1)(ई) सपठित धारा 13(2) के तहत उन पर अपराध का आरोप लगाते हुए आरोप पत्र दिनांक 15.03.1994 को दायर किया गया था। अभियुक्त विशेष न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुआ और 6.6.1994 को उसे जमानत पर रिहा कर दिया गया। 10.8.1994 को आरोप तय किए गए और 8.11.1994 को मामले की सुनवाई शुरू हुई। हालाँकि , विचारण शुरू नहीं हुआ। 23.2.1999 को विद्वान विशेष न्यायाधीश, जो मुकदमे से जुड़े हुए थे , ने अभियुक्त को दोषमुक्त का निर्देश दिया क्योंकि तब तक मुकदमा शुरू नहीं हुआ था और दो साल की अवधि बीत चुकी थी, जिसके कारण उन्हें इस न्यायालय द्वारा राज देव शर्मा बनाम में बिहार राज्य (1998) 7 एससीसी 507 (जिसे बाद में राज देव शर्मा -1 लिखा जाएगा) में दिए गए निर्देशों के अनुसार अभियुक्त को दोषमुक्त करना पड़ा। कर्नाटक राज्य ने डीएसपी लोकायुक्त , मैंगलोर के माध्यम से अभियुक्तों को दोषमुक्त करने के मुद्दे पर उच्च न्यायालय के समक्ष अपील दायर की। उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने, आक्षेपित आदेश के तहत, अपील की अनुमति दी , दोषमुक्त करने के आदेश रद्द कर दिया और मामले को विचारण न्यायालय में इस राय के साथ वापस भेज दिया , कि किसी अभियुक्त पर भ्रष्टाचार का आरोप लगाने वाला मामला राज देव शर्मा -I, जैसा कि राज देव शर्मा (II) बनाम बनाम बिहार राज्य (1999) 7 एससीसी 604 में इस न्यायालय द्वारा स्पष्ट किया है, में दिए गए निर्देशों का अपवाद था। अचरज की बात है कि उच्च न्यायालय ने न केवल राज्य द्वारा दोषमुक्ति के आदेश के खिलाफ अपील दायर करने में 55 दिनों की देरी को माफ कर दिया , बल्कि अभियुक्त को नोटिस जारी किए बिना ही अपील स्वीकार भी कर ली। पीड़ित अभियुक्त ने विशेष अनुमति द्वारा यह अपील दायर की है। अन्य सभी अपीलों में भी यही तथ्य हैं। विवरण के अभाव में, इतना कहना पर्याप्त है कि सभी अपीलों में भ्रष्टाचार के आरोपों का सामना कर रहे अभियुक्तों को आरोप तय होने की तारीख से दो साल बीत जाने के बावजूद मुकदमा शुरू नहीं होने

के कारण विशेष अदालतों द्वारा दोषमुक्त कर दिया गया था और सभी राज्य अपीलों को संबंधित अभियुक्त व्यक्तियों पर नोटिस जारी किए बिना ही उच्च न्यायालय द्वारा स्वीकार कर लिया गया।

अपीलें तीन विद्वान न्यायाधीशों की खंडपीठ के समक्ष सुनवाई के लिए आईं , जिन्होंने इस सामान्य आधार पर गौर किया कि उच्च न्यायालय में अपीलों को वहां के विद्वान न्यायाधीश ने अभियुक्त को नोटिस जारी किए बिना ही स्वीकार कर लिया था और केवल इसी आधार पर, नोटिस के अभाव में, यहां अपीलों की अनुमति दी जा सकती है और उच्च न्यायालय के समक्ष अपीलों को अभियुक्तों को नोटिस के बाद नए सिरे से निपटान के लिए दायर करने के लिए बहाल किया जा सकता है, लेकिन यह महसूस किया गया कि इन अपीलों में एक सवाल उठा जो कई और अपीलों में में उठने की संभावना थी और इसलिए अपीलों पर सुनवाई गुण -दोष पर की जानी चाहिए। 19 सितंबर 2000 के आदेश में तीन विद्वान न्यायाधीशों की खंडपीठ ने कहाः

"सवाल यह है कि क्या इस अदालत के पहले के फैसले , मुख्य रूप से *कॉमन कॉज़ बनाम भारत संघ (1996 (4) एससीसी 33), कॉमन कॉज़ बनाम भारत संघ (1996(6) एससीसी 775), राज देव शर्मा बनाम बिहार राज्य (1998 (7) एससीसी 507) और राज देव शर्मा (II) बनाम बिहार राज्य 1999 (7) एससीसी 604),* भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम और अन्य आर्थिक अपराधों के तहत अभियोजन पर लागू होंगे।

उपरोक्त वर्णित निर्णयों का अवलोकन करने के बाद , हमारा विचार है कि इन अपीलों की सुनवाई संविधान पीठ द्वारा की जानी चाहिए। हम यह दृष्टिकोण इसलिए अपनाते हैं क्योंकि हमारा मानना है कि इन निर्णयों में जारी किए गए विभिन्न दिशानिर्देशों और निर्देशों का संश्लेषण करना आवश्यक हो सकता है। हमारा यह भी विचार है कि एक संविधान पीठ को इस बात पर विचार करना करना चाहिए कि क्या इनमें से कुछ निर्णयों में उल्लिखित प्रकृति की समय सीमाए कानून के तहत तहत निर्धारित की जा सकती है।"

25 अप्रैल, 2001 को संविधान पीठ द्वारा अपीलों पर सुनवाई की गई और सुनवाई के दौरान संविधान पीठ का ध्यान अब्दुल रहमान अंतुले और अन्य बनाम आरएस नायक एवं अन्य (1992) 1 1 एससीसी 225 मामले में पूर्व की संविधान पीठ के फैसले और तीन विद्वान न्यायाधीशों की खंडपीठ द्वारा दिनांक 19 सितंबर 2000 के निर्देश के आदेश में संदर्भित चार निर्णय की ओर आकर्षित किया गया। ऐसा प्रतीत होता है कि संविधान पीठ के विद्वान न्यायाधीशों की राय थी कि *कॉमन कॉज़ (II) और राज देव शर्मा (II)* के मामलों में दिए गए निर्देश अब्दुल रहमान अंतुले के मामले में संविधान पीठ के निर्देशों के विपरीत थे, बाद का मामला पांच न्यायाधीशों वाला था , जिस कारण पीठ के निर्णय के अनुसार अपीलें सात विद्वान न्यायाधीशों की पीठ द्वारा सुने जाने योग्य थीं। दिनांक 26 अप्रैल, 2001 के आदेश का प्रासंगिक भाग इस प्रकार हैः

''ए. आर. अंतुले के मामले में यह अवधारित किया कि "सभी आपराधिक कार्यवाही के समापन के लिए बाहरी समय सीमा निर्धारित करना या नियत करना न तो उचित है और न ही संभव है। फिर भी, उपर्युक्त चार निर्णयं ऐसी समय सीमा निर्धारित करते हैं। उनमें से दो यह भी निर्धारित करते हैं कि आपराधिक कार्यवाही के किस वर्ग पर ऐसी समय सीमा लागू होनी चाहिए और और किस वर्ग पर नहीं।

हमारा मानना है कि इन परिस्थितियों में, सात विद्वान न्यायाधीशों की पीठ को इस बात पर विचार करना चाहिए कि क्या ए.आर. अंतुले के मामले में पारित उपर्युक्त आदेश अभी भी कायम है; यदि नहीं, तो क्या इन निर्णयों में दिए गए सामान्य निर्देश कानून में स्वीकार्य हैं और उन्हें बरकरार रखा जाना चाहिए।

इसे ध्यान में रखते हए कि सात विद्वान न्यायाधीशों की पीठ द्वारा क्या विचार किया जाना है, अटॉर्नी जनरल और राज्यों के महाधिवक्ता को नोटिस जारी किया जाए।

उचित दिशा-निर्देश के लिए कागजात माननीय मुख्य न्यायाधीश के समक्ष रखे जाए। मामले के महत्व को ध्यान में रखते हुए, बेंच का गठन शीघ्र किया जा सकता है।''

20.02.2002 को न्यायालय ने निर्देश दिया दोनों कॉमन कॉज मामलों में , याचिकाकर्ता, जो संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत रिट-याचिकाओं से उत्पन्न हुए थे , इस न्यायालय द्वारा जनहित याचिकाओं के रूप में सुना और निर्णय लिया गया था , को नोटिस जारी किया जाए। "कॉमन कॉज" ने जवाब दिया है और अधिवक्ता के माध्यम से उपस्थित हुआ है।

हमने भारत के अटॉर्नी जनरल की ओर से पेश हुए विद्वान अपर सॉलिसिटर जनरल श्री आर. एन. त्रिवेदी वरिष्ठ वकील श्री रंजीत कुमार , उनकी सहयोगी अपीलकर्ताओं की वकील सुश्री बीनू टम्टा, वकील श्री संजय आर. हेगड़े और श्री सत्य मित्रा प्रत्युत्तरदाताओं के अधिवक्ता "कॉमन कॉज़" के वकील श्री एस . मुरलीधर और ऐसे अन्य महाधिवक्ता और स्थायी वकील जो राज्यों के लिए उपस्थित हुए है।

हम संदर्भ के क्रम में उद्धृत पांच निर्णयों के साथ-साथ पहले के कुछ निर्णयों का भी संक्षेप में उल्लेख करेंगे ताकि हमारे सामने रखे गए मुद्दे पर प्रकाश डाला जा सके।

श्रीमती मेनका गांधी बनाम भारत संघ और अन्य , (1978) 1 एससीसी 248, में इस न्यायालय की सात-न्यायाधीश की पीठ द्वारा अनुच्छेद 21 पर दूर्दर्शिता का विस्तार, ताकि इसके व्यापक दायरे और सामग्री को समझा जा सके, ने 12 फरवरी 1979 हो हुसैनारा खातून और अन्य (I) बनाम गृह सचिव, बिहार राज्य (1980) 1 एससीसी 81 में की गई कानून की घोषणा को प्रेरित किया कि अनुच्छेद21 प्रत्येक व्यक्ति को कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अलावा उसके जीवन या स्वतंत्रता से वंचित न करने का मौलिक अधिकार प्रदान करता है,ऐसी प्रक्रिया की कोई झलक नही है है बल्कि प्रक्रिया "उचित, निष्पक्ष और न्यायसंगत होनी चाहिए; और इससे निसंदेह, त्वरित सुनवाई सुनवाई का अधिकार प्राप्त होता है। न्यायालय ने कहा - ''कोई भी प्रक्रिया जो यथोचित त्वरित

सुनवाई सुनिश्चित नहीं करती है उस 'उचित, निष्पक्ष या न्यायसंगत' नहीं माना जा सकता है और यह अनुच्छेद 21 का उल्लंघन होगा। इसलिए, इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि शीघ्र सुनवाई, और शीघ्र सुनवाई द्वारा विचरण से हमारा मतलब है यथोचित शीघ्र विचारण़अनुच्छेद 21 में निहित निहित जीवन और स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार का एक अभिन्न और आवश्यक हिस्सा है।''
हुसैनारा खातून (i) के कानून के कथनानुसार किसी भी मंच पर अनुचित रूप से लंबी सुनवाई या आपराधिक कार्यवाही से संतप्त कई अभियुक्त व्यक्ति, एक मामला बनाने पर आरोपों , आपराधिक कार्यवाही और/ या दोषसिद्धि को संविधान के अनुच्छेद21 के उल्लंघन के आधार पर रद्द करने के लिए याचिकाओं को सफलतापूर्वक् बनाए रखने में सक्षम थे। त्वरित सुनवाई और निष्पक्ष प्रक्रिया का का अधिकार संवैधानिक न्यायशास्त्र के पथ पर कई मील के पत्थर पार कर चुका है। मेनका गांधी (सुप्रा) मामले में, इस न्यायालय ने माना कि भाग III द्वारा गारंटीकृत कई मौलिक अधिकारों को एक अभिन्न संपूर्ण के घटकों के रूप में पढ़ा जाना चाहिए , न कि अलग-अलग चैनलों के रूप में , अनुच्छेद 21, 19 और 14 की कसौटी पर खरा उतरने के लिए कानून और प्रक्रिया की तर्कसंगतता सही, उचित और निष्पक्ष होनी चाहिए न कि मनमानी, काल्पनिक या दमनकारी, जिसका अर्थ है कि कि त्वरित सुनवाई यथोचित शीघ्र सुनवाई होनी चाहिए जो कि अनुच्छेद 21 के तहत जीवन और स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार का एक अभिन्न और आवश्यक अंग है। मे *नका गांधी और हुसैनारा खातून (I)* के सिद्धांतों को असंख्य स्थितियों में लागू करने वाले कानून की प्रवृत्ति और विकास को चिह्नित करने वाले कई मामले *अब्दुल रहमान अंतुले और अन्य बनाम आरएस नयन और अन्य (1992) 1 एससीसी 225ए (एआर अंतुले*, संक्षेप में) की संविधान पीठ द्वारा इस न्यायालय के विचार के लिए आए। त्वरित सुनवाई के अधिकार के समर्थकों ने इस न्यायालय के समक्ष इस दिशा दिशा में एक कदम आगे बढ़ाने और समय सीमा निर्धारित करने का पुरजोर आग्रह किया , जिसके बाद किसी भी आपराधिक कार्यवाही को चलने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए़ उन्होंने वकालत की की कि जब तक ऐसा नहीं किया जाता, मेनका गांधी और हुसैनारा खातून (I) में अनुच्छेद 21 की गई व्याख्या मात्र एक भ्रम और एक साधारण बात बनकर रह जायेगी। इस न्यायालय के संवैधानिक क्षेत्राधिकार का आह्वान करते हुए न्यायिक रूप से दो टर्मिनी बनाने और गणितीय सूत्र की की तरह लागू होने वाली परिसीमा की अवधि निर्धारित करने के लिए़ जिसके आगे कोई मुकदमा या या आपराधिक कार्यवाही आगे नहीं बढ़ेगी, जिसका विपक्षीयों द्वारा यह कहते हुए विरोध किया गया कि कि त्वरित सुनवाई का अधिकार संविधान द्वारा गारंटीकृत अन्य मौलिक अधिकारों से कुछ कमतर था। था। समर्थकों द्वारा की गई दलीलों में यह शामिल था कि अनुच्छेद 21 से प्राप्त त्वरित सुनवाई के अधिकार को सार्थक, लागू करने योग्य और प्रभावी बनाने के लिए एक बाहरी सीमा होनी चाहिए जिसके आगे कार्यवाही जारी रखना अनुच्छेद 21 का उल्लंघन होगा । यह प्रस्तुत किया गया था कि धारा 468 दंड प्रक्रिया संहिता केवल छोटे अपराधों पर लागू होती है , लेकिन न्यायालय को इसी सिद्धांत को बड़े अपराधों पर भी लागू करना चाहिए। यह भी आग्रह किया गया कि अपराध के पंजीकरण की तारीख से 10 वर्ष की अवधि तक को बाहरी सीमा के रूप में रखा जाना चाहिए जिसमें जांच में लगने वाले समय को गिना जाएगा।

एआर अंतुले के मामले में संविधान पीठ ने विस्तृत दलीलें सुनीं। न्यायालय ने , अपनी उस घोषणा में , कुछ प्रस्ताव तैयार किए , जिनकी संख्या 11 थी, जो दिशानिर्देश के रूप में काम करेंगे। हमारे उद्देश्य के लिए उन सभी प्रस्तावों को पुन : प्रस्तुत करना आवश्यक नहीं है। यह के लिए पर्याप्त है कि संविधान पीठ की राय में (i) संविधान के अनुच्छेद 21 में निहित निष्पक्ष , न्यायसंगत और उचित प्रक्रिया अभियुक्त पर शीघ्र मुकदमा चलाने का अधिकार बनाती है; (ii) अनुच्छेद 21 से प्राप्त त्वरित सुनवाई के अधिकार में सभी चरण शामिल हैं , अर्थात् जांच, पूछताछ, परीक्षण, अपील, पुनरीक्षण और पुन : परीक्षण का चरण ; (iii) देरी के लिए कौन जिम्मेदार है और किन कारकों ने देरी में योगदान दिया है , ये प्रासंगिक कारक हैं। अपराध की प्रकृति, अभियुक्तों और गवाहों की संख्या , संबंधित अदालत का कार्यभार , प्रचलित स्थानीय परिस्थितियाँ और जिसे प्रणालीगत देरी कहा जाता है , सहित संबंधित परिस्थितियों को ध्यान में रखा जाना चाहिए; (iv) जरूरी नहीं कि प्रत्येक देरी से अभियुक्त पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े क्योंकि कुछ कुछ देरी वास्तव में उसके लाभ के लिए काम करती है। दिशानिर्देश 8, 9, 10 और 11 हमारे के लिए प्रासंगिक हैं और इसलिए इन्हें यहां निकाला और पुनप्रस्तुत किया गया है -

"(8) अंततः, अदालत को कई प्रासंगिक कारकों 'संतुलन परीक्षण' या 'संतुलन प्रक्रिया संतुलन कर तुलना करनी होगी और प्रत्येक मामले में यह निर्धारित करना होगा कि क्या किसी दिए गए मामले में त्वरित सुनवाई के अधिकार से इनकार किया गया है।

(9) सामान्यतया, जहां अदालत इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि किसी अभियुक्त के मुकदमे की त्वरित सुनवाई के अधिकार का उल्लंघन किया गया है , आरोप या दोषसिद्धि जैसा भी मामला हो , रद्द कर दी जाएगी। लेकिन यह एकमात्र प्राप्त उपचार / समाधान नहीं है . किसी मामले में अपराध प्रकृति और अन्य परिस्थितियाँ ऐसी हो सकती हैं कि कार्यवाही को रद्द करना न्याय के हित में हो सकता है। ऐसे मामले में, अदालत मामले में परिस्थितियों को देखते हुए ऐसे अन्य उचित आदेश आदेश देने के लिए स्वतंत्र है, जिसमें मुकदमे को एक निश्चित समय के भीतर समाप्त करने का आदेश भी शामिल है, जहां मुकदमा समाप्त नहीं हुआ है या जहां मुकदमा समाप्त हो गया है , वहां सजा को कम करना उचित और न्यायसंगत माना जा सकता है।

(10) अपराधों की सुनवाई के लिए कोई समय -सीमा तय करना न तो उचित है और न ही व्यवहारिक है। ऐसा कोई भी नियम योग्य होने के लिए आवश्यक है। इस तरह का नियम केवल औचित्य साबित करने का बोझ अभियोजन पक्ष के कंधों भार को तर्कसंगत साबित करने के लिए भी भी विकसित नहीं किया जा सकता है। त्वरित सुनवाई के अधिकार से इनकार की शिकायत के प्रत्येक प्रत्येक मामले में , देरी को उचित ठहराना और समझाना मुख्य रूप से अभियोजन पक्ष का काम है। साथ ही, शिकायत पर फैसला सुनाने से पहले किसी मामले की सभी परिस्थितियों पर विचार

करना अदालत का कर्तव्य है। संयुक्त राज्य अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय ने भी छठे संशोधन के बावजूद ऐसी किसी भी बाहरी समय-सीमा को तय करने से बार-बार इनकार किया है न ही हम यह सोचते हैं कि ऐसी कोई बाहरी सीमा तय न करने से त्वरित सुनवाई के अधिकार की गारंटी निष्प्रभावी हो जाती है।

(11) त्वरित सुनवाई के अधिकार से इनकार करने और उसके आधार पर अनुतोष चाहने सम्बन्धित आपत्ति को पहले उच्च न्यायालय को संबोधित किया जाना चाहिए। भले ही उच्च न्यायालय ऐसी याचिका पर विचार करता है , लेकिन गंभीर और असाधारण प्रकृति के मामले को छोड़कर, आमतौर पर उसे कार्यवाही पर रोक नहीं लगानी चाहिए। हालाँकि, उच्च न्यायालय में ऐसी कार्यवाही को प्राथमिकता के आधार पर निपटाया जाना चाहिए।'

अपने फैसले के दौरान संविधान पीठ ने कुछ टिप्पणियाँ भी कीं जिन्हें उद्धरित कर पुन : प्रस्तुत करने की आवश्यकता है: -

"लेकिन फिर त्वरित परीक्षण या उक्त अवधारणा को व्यक्त करने वाली अन्य अभिव्यक्तियां आवश्यक रूप से प्रकृति में सापेक्ष हैं। कोई पूछ सकता है कि त्वरित का मतलब है , कितना शीघ्र? कितना विलम्ब अत्यधिक है ? हमें नहीं लगता कि आपराधिक कार्यवाही के निष्कर्ष के लिए कोई समय-सारणी निर्धारित करना संभव है। अपराध की प्रकृति, अभियुक्तों की संख्या गवाहों की संख्या, विशेष अदालत में कार्यभार , संचार के साधन और कई अन्य परिस्थितियों को ध्यान में रखना होगा। (पैरा 83).

"...सभी आपराधिक कार्यवाहियों के समापन के लिए कोई बाहरी समय -सीमा निकालना या निर्धारित करना न तो उचित है और न ही संभव है। त्वरित सुनवाई के अधिकार को प्रभावी बनाने के लिए ऐसा करना आवश्यक नहीं है। हम इससे भी सन्तुष्ट नहीं है कि बाहरी सीमा के बिना , अधिकार भ्रामक हो जाता है'। (पैरा 83) "

"...अनुच्छेद 21 के अलावा भी इस देश में अदालतों को आपराधिक मामलों में अनुचित देरी का संज्ञान है और जहां भी अत्यधिक देरी हुई थी या जहां कार्यवाही बहुत लंबे समय तक लंबित थी और किसी भी आगे की कार्यवाही को दमनकारी और अनुचित माना गया था , उचित आदेश देकर उन्हें ख़त्म कर दिया गया"। (पैरा 65)

[जोर दिया गया]

1986 में, "कॉमन कॉज़"__ एक पंजीकृत सोसायटी, सार्वजनिक मुद्दों का समर्थन करते हुए, ने कुछ निर्देशों की मांग करते हुए भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत एक याचिका दायर की। एक संक्षिप्त आदेश ("कॉमन कॉज" ए रजिस्टर्ड सोसाइटी थ्रू इट्स डायरेक्टर बनाम यूनियन

ऑफ इंडिया व अन्य (1996) 4 एससीसी 32, इसके बाद कॉमन कॉज (I)) द्वारा, इस न्यायालय की दो-न्यायाधीश पीठ ने निर्देशों के दो सेट जारी किए। एक , जमानत के संबंध में , और दूसरा, मुकदमे को रद्द करने के संबंध में भारतीय दंड संहिता के तहत कई अपराधों के लिए प्रदान की कारावास की मात्रा और अभियुक्तों द्वारा पहले ही जेल में बिताई गई अवधि के आधार पर जेलों में बंद विचाराधीन अभियुक्तों को ऐसी शर्तों के अधीन जमानत या व्यक्तिगत मुचलका पर रिहा करने का निर्देश दिया गया था, जैसा कि न्यायालय सीआरपीसी की धारा 437 के आलोक में लगाना उचित उचित समझे। निर्देशों के दूसरे सेट में लंबित मामलों में मुकदमे को समाप्त करने और अभियुक्त अपराध की प्रकृति (i) अधिकतम सजा, चाहे केवल जुर्माना या कारावास , और यदि कारावास, तो कानून में निर्धारित अधिकतम सीमा, और (ii) वह अवधि जिसके लिए मामला आपराधिक अदालत अदालत में लंबित है, के आधार पर उन्मोचित या दोषमुक्त करने का निर्देश दिया गया है।

डिवीजन बेंच द्वारा दिए गए निर्देशों के अवलोकन से पता चलता है कि मामलों को दो श्रेणियों में विभाजित किया गया है: (i) यातायात अपराध, और (ii) आईपीसी या उस समय लागू किसी अन्य कानून के तहत मामले। न्यायालय ने निचली अदालतों को निम्नलिखित घटना घटित होने और विलंब की अवधि के आधार पर ऐसे मामलों को बंद करने का निर्देश दिया-

श्रेणी (i) : यातायात अपराध:

अदालत ने आरोपियों को समन नहीं मिलने या किसी भी अन्य कारण से दो साल से अधिक समय बीत जाने पर मामले को बंद करने और आरोपियों को बरी करने का निर्देश दिया।

श्रेणी *(ii)* : आईपीसी *या उस समय लागू किसी अन्य कानून के तहत मामले*

न्यायालय ने निर्देश दिया कि निम्नलिखित उपश्रेणियों में यदि मुकदमा शुरू नहीं हुआ है और और प्रत्येक उप-श्रेणी के खिलाफ अंकित अवधि समाप्त हो गई है तो मामला बंद कर दिया जाएगा और अभियुक्त को उन्मोचित कर दिया जाएगा या दोषमुक्त कर दिया जाएगा-

मामलों की प्रकृति	विलंब की अवधि अर्थात परीक्षण नहीं
न्यायालय की अनुमति से समझौता योग्य मामलों के लिए सुनवाई शुरू नहीं हुई	दो साल से अधिक
ऐसे अपराध से संबंधित मामले जो गैर -संज्ञेय और जमानती हैं	दो साल से अधिक
मामले केवल जुर्माने से दंडनीय और आवर्ती	दो साल से अधिक

प्रकृति के नहीं होने वाले अपराधों से संबंधित	
एक वर्ष से अधिक एक वर्ष तक के कारावास से दंडनीय मामले, जुर्माने के साथ या उसके बिना	दो साल से अधिक
तीन वर्ष तक के कारावास से दंडनीय अपराध से संबंधित मामले जुर्माने के साथ या उसके बिना	

लंबित अवधि की अवधि की गणना अभियुक्तों को बुलाए जाने की तारीख से करने का निर्देश दिया गया था। कोर्ट में पेश होने के लिए डिवीजन बेंच ने निर्देश4 के तहत मामलों की कुछ श्रेणियां श्रेणियां निर्दिष्ट कीं, जिन पर उसके निर्देश लागू नहीं होंगे। निर्देश 5 के तहत, इस अदालत ने निर्देश 4 के अंतर्गत आने वाले अपराधों को प्राथमिकता के आधार पर चलाने और इस निर्देश के पालन की निगरानी उच्च न्यायालयों द्वारा की जाएगी, का निर्देश दिया। सभी निर्देश न केवल उस दिन लंबित मामलों पर बल्कि उसके बाद शुरू होने वाले मामलों पर भी लागू किए गए थे।

कॉमन कॉज़- (I) में उपरोक्त निर्देश 1 मई, 1996 को दिए गए थे। 6 महीने की अवधि भी नहीं बीती थी , 15.10.1996 को, श्री शिओ राज पुरोहित एक सार्वजनिक -उत्साही वकील ने इस न्यायालय में एक पत्र याचिका को संबोधित करते हुए कॉमन कॉज़(I) में इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्देशों से उत्पन्न होने वाले कुछ परिणामों पर और जिनसे समाज के गंभीर नुकसान के साथ अन्याय होने की संभावना थी और जिसके परिणामस्वरूप अभियुक्तों द्वारा अपनाई जाने वाली टालमटोल की रणनीति को बढ़ावा मिल सकता था कि ओर न्यायालय का ध्यान आकृष्ट करवाया। इस आदालत की समान दो-न्यायाधीशों की पीठ, जिसने कॉमन कॉज़ (I) में निर्देश जारी किए थे, ने तीन निर्देश दिए जिनका प्रभाव कॉमन कॉज़ (I) में निर्देशों को स्पष्ट / संशोधित करने पर पड़ा। पहले निर्देश में स्पष्ट किया गया है कि अभियुक्त की विलम्बित रणनीति या कार्रवाई द्वारा मुकदमे को लम्बा खींचने के कारण आपराधिक कार्यवाही में बिताया गया समय , पूरी तरह या आंशिक रूप से इसमें शामिल नहीं किया जाएगा या उच्च न्यायालयों से ऐसे अभियुक्तों द्वारा प्राप्त आपराधिक कार्यवाही पर आदेश के कारण आपराधिक कार्यवाही की लंबित्ता के सम्बन्ध में समय - सीमा की गणना करते समय दूसरी दिशा ने टर्मिनस यथास्थिति को परिभाषित किया , अर्थात सत्र न्यायालय में 'परीक्षणों की लंबितता ', वारंट मामलों और सम्मन मामलों पर काम करते समय परीक्षण शुरू करने का बिंदु क्या होगा। तीसरी दिशा में, अपराध की प्रकृति के संदर्भ में मामलों की सूची, जिन पर सामान्य कारण (I) के निर्देश लागू नहीं होंगे, का विस्तार किया गया।

राज देव शर्मा *(I)* के मामले में, एक अभियुक्त पर भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 की धारा 5(2) और 5 (1) (ई) के तहत अपराध का आरोप लगाया गया था , जो उच्च न्यायालय में असफल होने पर, इस न्यायालय में आया और त्वरित सुनवाई के अधिकार के उल्लंघन के आधार पर उनके खिलाफ चलाए गए मुकदमे को रद्द करने की मांग की। उसके खिलाफ 1982 में अपराध दर्ज किया गया था और 1985 में आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया था। अभियुक्त 24.4.1987 को विशेष विशेष न्यायाधीश के समक्ष उपस्थित हुआ। 4.3.1993 को आरोप तय किये गये। 1.6.1995 तक 40 40 गवाहों में से केवल 3 को परीक्षित कराया गया। मामले की सुनवाई करने वाली इस अदालत की की तीन-न्यायाधीशों की पीठ ने उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश को रद्द कर दिया और अपने फैसले के आलोक में उचित आदेश पारित करने के लिए मामले को विशेष न्यायाधीश के पास वापस वापस भेज दिया। पैरा 17 के माध्यम से, तीन-न्यायाधीशों की बेंच ने एआर अंतुले में निर्धारित प्रस्तावों के पूरक के रूप में पांच और निर्देश जारी किए। निर्देशों को पुन : प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं है और यह देखने के लिए पर्याप्त है कि अपराध को दो श्रेणियों में विभाजित करके जिनमें 7 साल से अधिक की अवधि के लिए कारावास की सजा हो सकती है और जो 7 साल से अधिक की अवधि के लिए कारावास से दंडनीय हैं, न्यायालय ने सीमा की अवधि निर्धारित की है , जिसके संदर्भ में या तो अभियोजन साक्ष्य बंद कर दिया जाएगा या अभियुक्त को जमानत पर रिहा कर दिया जाएगा। जहां तक अपराधों के मुकदमे का सवाल है, निर्देश देने के उद्देश्य से, न्यायालय ने अपराधों और देरी की प्रकृति और अवधि को दो भागों में वर्गीकृत किया है , जिन्हें निम्नानुसार सारणीबद्ध रूप में निर्धारित किया जा सकता है -

अपराध की प्रकृति	प्रकृति और विलंब की अवधि
सात साल से अधिक की अवधि के लिए कारावास कारावास से दंडनीय है , चाहे आरोपी जेल में है या नहीं	लगाए गए आरोपों पर आरोपी की दलील दर्ज करने की तारीख से दो साल की समाप्ति , चाहे अभियोजन दो वर्ष की उक्त अवधि के भीतर सभी सभी गवाहों की जांच की है या नहीं
अपराध सात साल से अधिक की अवधि के लिए कारावास से दंडनीय है, चाहे अभियुक्त जेल में है या नहीं	आरोप पर अभियुक्त की दलील दर्ज करने की तारीख से तीन साल पूरे करना फ्रेम किया गया , चाहे अभियोजन पक्ष ने उक्त अवधि के भीतर सभी गवाहों की जांच की हो या नहीं

जैसा कि ऊपर कहा गया है, दो या तीन साल पूरे होने पर जो परिणाम आएगा , वह यह है कि अदालत ने निर्देश दिया कि विचारण न्यायालय अभियोजन साक्ष्य को बंद कर देगा और आगे बढ़ बढ़ सकता है। परीक्षण के अगले चरण के लिए दूसरी श्रेणी के संबंध में , न्यायालय ने अपवाद के रूप में एक शर्त जोड़ी , जिसमें कहा गया- "जब तक कि बहुत ही असाधारण कारणों को दर्ज न किया जाए और न्याय के हित में, न्यायालय अभियोजन पक्ष को उपरोक्त समय सीमा" (तीन वर्ष की) के अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए अतिरिक्त समय देना आवश्यक समझता है। मुकदमे को लंबा खींचने में अभियुक्तों के आचरण के कारण अभियोजन साक्ष्य को पूरा करने में असमर्थता की अवधि और जिस अवधि के दौरान अदालत के आदेशों या कानून के संचालन से मुकदमे पर रोक रोक लगी रही , उस अवधि को गणना से बाहर रखने का निर्देश दिया गया था जिसके अंत में अभियोजन साक्ष्य बंद कर दिया जाएगा । इसके अलावा , न्यायालय ने कहा कि उसके द्वारा दिए गए निर्देश *कॉमन कॉज (I)* में जारी निर्देशों जैसे कि *कॉमन कॉज (II)* में संशोधित किए गए के के अतिरिक्त और बिना किसी पूर्वाग्रह के होंगे।

राज देव शर्मा (I) एक बार फिर इस न्यायालय में *राजदेव शर्मा बनाम बिहार राज्य (1999) 7 एससीसी 604*, इसके बाद *राज देव शर्मा (II)* में विचार के लिए आया। यह केंद्रीय जांच ब्यूरो (सीबीआई) द्वारा जारी निर्देशों में स्पष्टीकरण के लिए (और कुछ संशोधन के लिए भी) दायर एक आवेदन पर था। मामले की सुनवाई करने वाली तीन जजों की पीठ में *केटी थॉमस, जे. और एम. श्रीनिवासन जे.* शामिल थे, जो *राज देव शर्मा (I)* के मामले में निर्देश जारी करने वाली बेंच में भी थे, और एम. बी. शाह, जे. राजीव शर्मा (I) के मामले में पीठ में नहीं थे। सीबीआई की प्रस्तुति में *राज देव शर्मा (I)* के मामले में दिए गए न्यायालय के निर्देश *ए.आर. अंतुले* के विपरीत थे और कार्य की अधिकता के कारण दिन -प्रतिदिन की सुनवाई करने में असमर्थता के कारण न्यायालय द्वारा लिए गए समय को ध्यान में नहीं रखा गया। सीबीआई ने *राज देव शर्मा (I)* मामले में निर्देशों को केवल संभावित बनाने का भी अनुरोध किया, यानी *राज देव शर्मा (I)* मामले में निर्देश जारी करने की तिथि से पहले की अवधि का विचार से बाहर रखा जाए। तीनों विद्वान न्यायाधीशों ने ने अलग-अलग निर्णय लिखे। *केटी थॉमस, जे.* ने अपने फैसले से, 'न्याय के गर्भपात की संभावना' को रोकने के लिए, *राज देव शर्मा (I)* में दिए गए निर्देशों में एक शर्त जोड़ी कि अभियोजन पक्ष द्वारा जो *राज देव शर्मा (I)* मामले में फैसले की तारीख पर लंबित थे , में अभियोजन के संबंध में एक वर्ष की अतिरिक्त अवधि का दावा किया जा सकता है और संबंधित न्यायालय आपराधिक न्याय न्याय प्रशासन के हित में आवश्यक समझे जाने पर इस तरह का विस्तार देने के लिए स्वतंत्र होगा। एम. श्रीनिवासन, जे. ने अपने अलग फैसले में, अपने स्वयं के कारण बताते हुए, व्यक्त की गई राय के साथ सहमति व्यक्त की और केटी थॉमस , जे. द्वारा किए जाने वाले एकमात्र का आदेश दिया और एमबी शाह जे . द्वारा व्यक्त की गई राय के साथ अपनी असहमति व्यक्त

एमबी शाह, जे. ने अपने असहमतिपूर्ण फैसले में आपराधिक न्याय देने में देरी के सबसे सामान्य कारणों का उल्लेख किया, जैसा कि इस न्यायालय में आने वाले कई रिपोर्ट किए गए मामलों मामलों से पता चलता है और माना गया कि आपराधिक मामलों के निपटान में देरी के कारणों का समाधान न्यायपालिका, विधायिका और राज्य सरकारें, तीनों द्वारा लिए जाने वाले प्रभावी कदमों में निहित है। एमबी शाह, जे. की राय में, न्यायिक आदेश द्वारा समय-सीमा अवरोध करने के पीछे उक्त खतरे हैं; जिसके आगे आपराधिक मुकदमा या कार्यवाही आगे नहीं बढ़ सकती है, का निर्माण (i) यह कानून और अंततः संविधान के अनुसार समाज के सुचारू कामकाज को प्रभावित करेगा बिना किसी उपचार के छोड़े गए पीड़ित गैरकानूनी तरीकों से बदला लेने का सहारा लेंगे जिसके परिणामस्वरूप अपराधों और अपराधियों में और वृद्धि होगी। समाज में बड़े पैमाने पर लोग भी असुरक्षित और असुरक्षा महसूस करेंगे और न्याय व्यवस्था पर से उनका विश्वास डगमगा जाएगा। अपराधियों पर कानून अपना निवारक प्रभाव खो देगा; (ii) न्यायाधीशों की वर्तमान संख्या संख्या और आपराधिक अदालतों में उपलब्ध बुनियादी ढांचे के साथ, उपलब्ध आपराधिक अदालतों के के लिए निर्धारित समय-सीमा के भीतर मामलों का निपटारा करना लगभग असंभव होगा ; (iii) ऐसी समय-सीमा निर्धारित करना अंतुले के मामले में संविधान पीठ द्वारा विशेष रूप से निर्धारित कानून के विपरीत हो सकता है। एम.बी. शाह, जे. की पूर्व-उद्धृत सोच में हम करतार सिंह बनाम पंजाब राज्य (1994) 3 एससीसी 569, जिसके पैरा 351 में संविधान पीठ द्वारा कही गई बातों की प्रतिध्वनि सुनते हैं, "इसमें कोई संदेह नहीं है , एक नागरिक की स्वतंत्रता को अदालतों द्वारा उत्साहपूर्वक संरक्षित किया जाना चाहिए, फिर भी अदालतों को टाडा अधिनियम के तहत मामलों में में न्याय देते समय न केवल अभियुक्तों की स्वतंत्रता, बल्कि पीड़ित और उनके प्रियजनों के हित और और सबसे ऊपर समुदाय के सामूहिक हित और राष्ट्र की सुरक्षा को ध्यान में रखना चाहिए , ताकि जनता न्यायिक प्रशासन की प्रणाली में विश्वास न खो दे और निजी प्रतिशोध में इसमें शामिल न हो हो जाए।"

अंत में एम.बी. शाह, जे. ने राय दी कि राज देव शर्मा (I) में दिए गए दिनांक 8.10.1998 के आदेश को स्थगित रखा जाना चाहिए और राज्य सरकार और उच्च न्यायालयों के रजिस्ट्रारों को विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा निर्धारित आपराधिक मामलों के निपटान के मानदंडों को ध्यान में रखते हुए लंबित मामलों के उपलब्ध आंकड़ों के आधार पर लंबित कार्यभार से निपटने के लिए अतिरिक्त अदालतों/ विशेष अदालतों (स्थायी/ तदर्थ) को स्थापित करने की विशिष्ट योजनाओं के साथ आने के लिए निर्देशित किया जाना चाहिए। अंत में न्यायालय ने सीबीआई द्वारा दायर आवेदन को बहुमत की राय के अनुसार निपटाने का निर्देश दिया।

मुकदमे में और आपराधिक कार्यवाही के समापन में देरी के कारणों की समझ आवश्यक है ताकि यह सराहना की जा सके कि क्या मुकदमे या कार्यवाही को समाप्त करने वाली सीमा निर्धारित निर्धारित किए जाने को उचित ठहराया जा सकता है। हमारे देश में न्याय देने में देरी का मूल कारण कारण न्यायाधीश-जनसंख्या- का खराब अनुपात है। भारत के विधि आयोग ने अपने सर्वेक्षण के आधार पर न्यायपालिका में जनशक्ति नियोजन पर अपनी 120वीं रिपोर्ट (जुलाई 1987) में खेद किया कि अनुच्छेद 39ए के बावजूद 42वें संशोधन (1976) द्वारा संविधान में एक प्रमुख निर्देशक सिद्धांत के रूप में जोड़ा गया, जो राज्य को न्याय को बढ़ावा देने वाली कानूनी प्रणाली के ऐसे संचालन को सुरक्षित करने के लिए बाध्य करता है और यह सुनिश्चित करता है कि किसी भी नागरिक को न्याय हासिल करने के अवसरों से वंचित नहीं किया जाए भारत में न्याय प्रशासन क्षेत्र क्षेत्र में कई पुनर्गठन प्रस्ताव मूलतः समस्या का समाधान , अस्थायी और अव्यवस्थित समाधान रहा है। भारत में न्यायाधीश-जनसंख्या-अनुपात (1971 की जनगणना के आधार पर) प्रति दस लाख जनसंख्या पर केवल 10.5 न्यायाधीश था, जबकि ऑस्ट्रेलिया में ऐसा अनुपात41.6, इंग्लैंड में 50.9, 50.9, कनाडा में 75.2 और संयुक्त राज्य अमेरिका में 107 था। विधि आयोग ने सुझाव दिया कि भारत को प्रति दस लाख भारतीय जनसंख्या पर 107 न्यायाधीशों की आवश्यकता है ; हालाँकि आरंभ करने के लिए न्यायाधीशों की संख्या को पाँच गुना तक बढ़ाने की आवश्यकता थी , यानी, पाँच साल की अवधि में प्रति मिलियन जनसंख्या पर50 न्यायाधीश, लेकिन किसी भी मामले में दस दस साल से अधिक नहीं। दुखद व्यंग्य के स्पर्श को छिपाना मुश्किल है जब विधि आयोग ने(अपनी (अपनी 120वीं रिपोर्ट में, उक्त) कहा कि भारतीय न्यायपालिका का पर्याप्त पुनर्गठन एक ही समय हर किसी की चिंता का विषय है और इसलिए, किसी की भी चिंता का नहीं है। विचारण में देरी में योगदान देने वाले अन्य कारक भी हैं। एआर अंतुले के मामले में , पैरा 83 के तहत, संविधान पीठ ने कहा है कि किसी मामले की सुनवाई सप्ताह में पांच दिन और सप्ताह दर सप्ताह जारी रखने के प्रस्ताव के बावजूद , इन कारणों से सुनवाई समाप्त करना संभव नहीं हो सकता है , अर्थात् (1) अधिवक्ता की अनुपलब्धता, (2) अभियुक्त की अनुपलब्धता, (3) अंतर्वती कार्यवाही, और (4) अन्य प्रणालीगत देरी। इसके अलावा, न्यायालय ने कहा कि कुछ मामलों में बड़ी संख्या में गवाह हो सकते सकते हैं और कुछ अपराधों में , उनकी प्रकृति के कारण , साक्ष्य लंबा हो सकता है। *करतार सिंह बनाम में पंजाब राज्य (1994) 3 एससीसी 569* में एक अन्य संविधान पीठ ने राय दी कि देरी प्रत्येक मामले की परिस्थितियों पर निर्भर है क्योंकि देरी के कारण अलग -अलग होंगे, जैसे (i) राष्ट्रीय या अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अपराधों के व्यापक प्रभाव और इसके डिजाइन नेटवर्क के कारण जांच में देरी, (ii) गवाहों या गवाहों की जानबूझकर अनुपस्थिति , (iii) अदालत की फाइल पर फैसले की सघन सूची आदि। राज देव शर्मा (II) में, एमबी शाह, जे. की असहमतिपूर्ण राय में , देरी के कारणों को संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है , (1) विलंबकारी कार्यवाही, (2) आपराधिक प्रक्रिया

प्रक्रिया के आमूलचूल सरलीकरण और सुव्यवस्थित करने की दिशा में प्रभावी कदमों का अभाव; (3) अभाव; (3) बहु-स्तरीय अपील/ पुनरीक्षण आवेदन और अंतर्वर्ती मामलों के निपटाने को परिवर्तन के लिए (4) अत्यधिक फैसलों की सूची ; बढ़ते बकाया वाद ; प्रक्रिया की विलंबित सेवा ; और (5) न्यायपालिका, कार्यपालिका की उपेक्षा के कारण बुनियादी आवश्यकताओं और सुविधाओं की कमी से जूझ रही है, जो सुचारू कामकाज को सक्षम बनाती है।

अपीलों, याचिकाओं और विविध याचिकाओं(जैसे कि जमानत और कार्यवाही को रद्द करने के के लिए) की सुनवाई के दौरान हमारे ध्यान में आने वाले कई मामले , न्यायाधीशों की अपर्याप्त संख्या के अलावा , मुकदमे में देरी के लिए योगदान देने वाले अन्य कारकों का खुलासा करते हैं। सामान्यतया, ये हैं : (i) अदालतों/ मामलों की संख्या के अनुपात में लोक अभियोजकों की अनुपस्थिति, या नियुक्ति में देरी ; (ii) अभियुक्तों/ गवाहों पर समन और वारंट की अदम तामीली विलम्ब से तामीली; (iii) विचाराधीन कैदियों को न्यायालय में पेश न किया जाना; (iv) पीठासीन पीठासीन न्यायाधीश का छुट्टी पर जाना , हालांकि मामले सुनवाई के लिए नियत हैं ; (v) बार के सदस्यों द्वारा हड़ताल; और (vi) अभियुक्त द्वारा नियुक्त अधिवक्ता ने अचानक उपस्थित होने से इनकार कर दिया या व्यक्तिगत कारणों या व्यक्तिगत असुविधा के लिए स्थगन की मांग की। यह सामान्य ज्ञान है कि सरकारी अभियोजकों की नियुक्तियों का राजनीतिकरण किया जाता है। परंपरा के के अनुसार, सरकारी अधिवक्ताओं और लोक अभियोजकों की नियुक्ति संबंधित स्तर पर न्यायिक प्रशासन के प्रमुख की सिफारिश पर या उसके परामर्श से कार्यपालिका द्वारा की जाती थी , लेकिन धीरे-धीरे कार्यपालिका ने जिला और सत्र न्यायाधीश की योग्यता आधारित सिफारिशों/ या परामर्श की की प्रक्रिया को दरकिनार करना शुरू कर दिया है। समन/ आदेशों की तामील न होने और विचाराधीन विचाराधीन कैदियों को पेश न करने के लिए सामान्य कारणों में पुलिस कर्मियों की कमी और पुलिस पुलिस लोगों का वीआईपी ड्यूटी या कानून व्यवस्था संबंधी ड्यूटी में व्यस्त होना बताया जाता है। मुकदमे में तेजी लाने में अदालतों की सहायता के लिए अपेक्षित पुलिस कर्मियों को उपलब्ध नहीं नहीं कराने के ये शायद ही वैध कारण हो सकते हैं। बार के सदस्यों को अपने कानूनी और नैतिक पेशेवर दायित्व को भी महसूस करना होगा और याद दिलाना होगा कि एक अभियुक्त के लिए एक संक्षिप्त विवरण स्वीकार करने के बाद जब मामला सुनवाई के लिए लिया जाता है तो उनके पास मुकदमे में उपस्थित होने से इनकार करने या बचने का कोई औचित्य नहीं है। न्यायालय द्वारा ये सभी कारक दर्शाते हैं कि त्वरित न्याय का लक्ष्य विधायिका, न्यायपालिका, कार्यपालिका और बार के के सदस्यों के प्रतिनिधि निकायों की संयुक्त और परिणामोन्मुख सामूहिक सोच और कार्रवाई से किया जा सकता है।

क्या परीक्षणों और कार्यवाहियों को समाप्त करने के लिए परिसीमा प्रतिबन्ध का होना बिल्कुल भी आवश्यक है? क्या समान लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कोई प्रभावी तंत्र उपलब्ध नहीं है? दण्ड प्रक्रिया संहिता, जैसा कि यह मौजूद है, में कुछ प्रावधान शामिल हैं जिनका सहारा अभियुक्त अभियुक्त के हितों की रक्षा के लिए किया जा सकता है और उसे मुकदमे में अनुचित शिथिलता या ढिलाई, से होने वाले उत्पीड़न से बचाया जा सकता है। धारा 309 , कार्यवाही को स्थगित करने या स्थगित करने की शक्ति से संबंधित है आम तौर पर प्रत्येक जांच या परीक्षण को यथासंभव शीघ्रता से आगे बढ़ाने का प्रावधान करती है , और विशेष रूप से, जब गवाहों की परीक्षा एक बार शुरू हो जाती है, तो इसे दिन-प्रतिदिन जारी रखा जाता है , जब तक उपस्थित सभी गवाहों की जांच नहीं हो जाती, जब तक कि न्यायालय को अगले दिन से आगे की तिथि तक को स्थगन दर्ज किए जाने वाले कारणों से आवश्यक नहीं लगता। धारा 309 का स्पष्टीकरण-2 न्यायालय को उचित मामलों में अभियोजन या अभियुक्त द्वारा भुगतान किया जाने वाला हर्जाना लगाने और कार्यवाही को स्थगन स्थगित करते समय पक्षकारों पर शर्त अधिरोपित करने की शक्ति प्रदान करता है। हर्जाना लगाने की की इस शक्ति का प्रयोग न्यायालयों द्वारा शायद ही कभी किया जाता है। धारा 258 अध्याय XX में, समन-मामलों की सुनवाई पर , उसके द्वारा दर्ज किए जाने वाले कारणों के आधार पर मजिस्ट्रेट को परिवाद के अलावा किसी अन्य तरीके से शुरू किए गए समन मामलों की सुनवाई के किसी भी स्तर पर बिना कोई फैसला सुनाए कार्यवाही को रोकने का अधिकार देता है , और जहां मुख्य गवाहों के साक्ष्य दर्ज किए जाने के बाद कार्यवाही को रोका जाता है , तो दोषमुक्त करने का निर्णय सुनाया जा सकता है , और किसी अन्य मामले में , उन्मोचित करने का प्रभाव डालते हुए , अभियुक्त को रिहा किया जा सकता है। इस प्रावधान का उपयोग न्यायालयों द्वारा लगभग कभी किया जाता है। उपयुक्त मामलों में , धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति का उपयोग ऐसे आदेश देने के लिए किया जा सकता है, जो दण्ड प्रक्रिया संहिता के तहत किसी भी आदेश को प्रभावी करने या किसी भी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा, न्याय के उद्देश्य को सुरक्षित करने के लिए आवश्यक हो। यह शक्ति व्यापक है और यदि विवेकपूर्ण और सचेत रूप से इसका प्रयोग किया जाए तो लगभग सभी स्थितियों का ध्यान रखा जा जा सकता है, जहां किसी मुकदमे, जांच या कार्यवाही में देरी के कारण या किसी अन्य कारण से हुए हुए उत्पीड़न या परेशानी के कारण उच्च न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप आवश्यक हो जाता है। उपर्युक्त मामलों में, उच्च न्यायालयों ने प्रथम सूचना रिपोर्ट और जांच को रद्द करने और कानून की प्रक्रिया के दुरुपयोग का मामला स्पष्ट रूप से सामने आने पर आपराधिक कार्यवाही को समाप्त करने के लिए सीआरपीसी की धारा 482 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग किया है। ऐसी शक्ति का प्रयोग निश्चित रूप से संविधान के अनुच्छेद 21 द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकार के उल्लंघन के मामले में किया जा सकता है । पीठ एआर अंतुले के मामले में संविधान पीठ ने उच्च न्यायालय में निहित

निहित ऐसी शक्ति का उल्लेख किया (उसके फैसले के पैरा 62 और 65 के माध्यम से) और माना कि यह स्पष्ट था कि अनुच्छेद 21 के अलावा भी , अदालतें आपराधिक मामलों या कार्यवाहियों में अनुचित या अत्यधिक देरी का ध्यान रख सकती हैं और यदि वे बहुत लंबे समय तक लंबित रहते हैं हैं तो उन्हें दमनकारी और अनुचित पाए जाने पर आगे की कार्यवाहियों को उचित आदेश देकर समाप्त कर दिया जाता है।

विधान कानून का वह स्रोत है जिसमें एक सक्षम प्राधिकारी द्वारा कानूनी नियमों की घोषणा शामिल होती है। जब न्यायाधीश न्यायिक निर्णयों द्वारा विशेष रूप से विधायिका के लिए आरक्षित प्रकृति के सामान्य अनुप्रयोग का एक नया सिद्धांत निर्धारित करते हैं , तो यह कहा जा सकता है कि उन्होंने कानून बनाया है , न कि केवल कानून घोषित किया है। न्यायशास्त्र के सिद्धांतों (12वें संस्करण) पर सैल्मंड आगे कहते हैं, "हमें विधायकों द्वारा कानून बनाने को अदालतों द्वारा कानून बनाने से अलग करना चाहिए। विधायक पूरी तरह से भविष्य के लिए और किसी भी वास्तविक विवाद विवाद के संदर्भ के बिना नियम बना सकते हैं ; अदालतें, जहां तक वे कानून बनाते हैं , वे ऐसा केवल अपने समक्ष मौजूद मामलों के सम्बन्ध में ही बना सकते हैं और केवल वहीं तक जहां तक उनके समाधान के लिए आवश्यक हो। न्यायिक कानून -निर्माण कानूनी विवादों के समाधान के लिए आकस्मिक है; विधायी कानून-निर्माण विधायक केंद्रीय कार्य है" (पृष्ठ 115)। न्यायिक निर्देशों द्वारा अनुमेय कानून और विधायिका के लिए विशेष रूप से आरक्षित कानून बनाने के बीच की विभाजन रेखा रेखा को समझना मुश्किल नहीं है। हम यहां यह निर्धारित करने के लिए चिंतित हैं कि क्या परिसीमा परिसीमा की विभिन्न अवधि निर्धारित करने में,जैसा कि ऊपर बताया गया है, न्यायालय ने न्यायिक न्यायिक कानून की सीमा का उल्लंघन किया है।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि न्यायिक रूप से लगाए गए परिसीमा प्रतिबन्ध उपरोक्त समस्याओं का समाधान प्रदान करने के लिए हैं। लेकिन इस प्रकृति का समाधान बड़ी समस्याओं को को जन्म देता है, जैसे बिना फैसले के मुकदमे को खत्म करना , न्याय तक पहुंच को बाधित करना और न्याय के द्वार से आसानी से बाहर निकलना। ऐसे सामान्य उपचारात्मक उपायों को उपयुक्त समाधान नहीं कहा जा सकता। दो कारणों से हम परिसीमा के ऐसे प्रतिबन्ध को अनावश्यक और अस्वीकार्य मानते हैं: पहला, क्योंकि यह अस्वीकार्य कानून के समान है, जो उस शक्ति से परे एक गतिविधि है जो संविधान न्यायपालिका को प्रदान करता है , और दूसरी बात , क्योंकि ऐसी सीमाएं एआर अंतुले के मामले में संविधान पीठ द्वारा निर्धारित कानून के सामने बतौर बाधा आड़े आती है और इसलिए मिसाल के सिद्धांत और उनकी बाध्यकारी प्रभावकारिता के विपरीत है।

प्रोफेसर सर विलियम वेड , क्यूसी द्वारा प्रशंसित मोनोग्राफ "ज्यूडिशियल एक्टिविज्म एंड कॉन्स्टीट्यूशनल डेमोक्रेसी इन इंडिया" में, "एक बड़े विषय के लिए समर्पित छोटी पुस्तक के रूप में,

में, विद्वान लेखक न्यायिक सक्रियता की सराहना दर्ज करते हुए, सावधानी बरतते हैं । "यह स्पष्ट है कि न्यायपालिका विधायी या प्रशासनिक एजेंसी के रूप में कार्य करने के लिए सबसे कम सक्षम है। है। एक बात के लिए, अदालतों के पास विस्तृत डेटा इकट्ठा करने या जांच करने के लिए सुविधाओं सुविधाओं की कमी है। डेटा के लिए उनके सामने पेश होने वाले अधिवक्ताओं पर निर्भरता में सम्भावित है कि वह उन्हें पक्षपातपूर्ण या अपर्याप्त जानकारी देंगे। दूसरी ओर , यदि अदालतों को अपने स्वयं के ज्ञान या अनुसंधान पर भरोसा करना है तो यह चयनात्मक और व्यक्तिपरक होगा। अदालतों के पास अपने आदेशों , योजनाओं और परिणामों के प्रभावी ढंग से पर्यवेक्षण और कार्यान्वयन के लिए कोई साधन नहीं है। इसके अलावा, चूंकि अदालतें अलग-अलग मामलों के लिए आदेश देती हैं, इसलिए उनके आदेश अलग-अलग और अलग-अलग स्थितियों के लिए कोई सुविधा नहीं देते हैं , जिनका प्रशासकों को अन्य मामलों में शासनादेश लागू करने में सामना करना पड़ेगा। अदालतों के पास अपने आदेशों , यदि वे अव्यवहारिक पाए जाते हैं या उनमें संशोधन की आवश्यकता होती है, को पलटने का कोई तरीका नहीं है कानून या प्रशासन के क्षेत्र में आगे बढ़ने पर अदालतों को जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ सकता है , उन पर प्रकाश डालते हुए , विद्वान लेखक सलाह देते हैं, "सर्वोच्च न्यायालय द्वारा स्वयं उपचारात्मक क्षेत्र में प्रवेश करने के बजाय समस्याओं पर ध्यान केंद्रित कराने के बाद निर्णय लेने का काम सरकार की अन्य शाखाओं पर छोड़ा जा सकता था ।"

न्यायपालिका का प्राथमिक कार्य कानून की व्याख्या करना है। यह सिद्धांतों, दिशानिर्देशों को निर्धारित कर सकता है और विधान द्वारा खुले और खाली छोड़े गए क्षेत्र में रचनात्मकता प्रदर्शित कर सकता है। 'द जज' (1979) में पैट्रिक डेवलिन ने कानून निर्माता के रूप में न्यायाधीश की भूमिका का उल्लेख किया है और कहा है कि इसमें कोई संदेह नहीं है कि ऐतिहासिक रूप से न्यायाधीशों ने कानून बनाया है , कम से कम इसे रचित किए जाने के अर्थ में , अब भी जब वे नवप्रवर्तन के ख़िलाफ़ हैं, तो भी उन्होंने कभी औपचारिक रूप से अपनी शक्तियों का हनन नहीं किया है उनका रवैया यह है: 'अगर हम चाहें तो हम कर सकते हैं, लेकिन हम सोचते हैं कि ऐसा न न करना ही बेहतर है। ' लेकिन इतिहास की बात करें तो क्या स्वर्ण युग के अंग्रेज न्यायाधीशों ने कानून बनाया था? उन्होंने ऐसे मामलों का फैसला किया जो सिद्धांतों पर आधारित थे। न्यायाधीश, जैसा कि लॉर्ड राइट ने एक बार अप्रत्याशित रूप से सुरम्य वाक्यांश में कहा था , 'प्राचीन भूमध्यसागरीय नाविकों की तरह, एक मामले से दूसरे मामले में आगे बढ़े , एक बिंदु से दूसरे बिंदु तक तट को गले लगाया और प्रणाली और विज्ञान के खुले समुद्र के खतरों से बचते रहे।' स्वर्ण युग युग के न्यायाधीश तर्कसंगत नहीं थे और प्रक्रियाओं को तैयार करने के अलावा , वे नवप्रवर्तक भी नहीं थे। उन्होंने आगे बढ़ने में सक्षम कोई नई मशीन डिज़ाइन नहीं की; उन्होंने तेज गति से आगे

बढ़ने में सक्षम कोई नई प्रणाली विकसित नहीं की उन्होंने कल्पनाओं और कुछ प्रक्रियात्मक तारों की की सहायता से प्रणाली को धरातल पर स्थापित किए जाने का संघर्ष किया।

प्रोफेसर एसपी साठे ने अपने हालिया लेख (वर्ष 2002) " ज्यूडिशियलएक्टिविज्म इन इंडिया इंडिया ट्रांसग्रेसिंग बॉर्डर्स एंड एनफोर्सिंग लिमिट्स में "दिशा-निर्देश: न्यायिक विधान का एक नया रूप" रूप" विषय को छुआ है। न्यायिक सक्रियता की वैधता का मूल्यांकन करते हुए , विद्वान लेखक ने अदालत को ठीक उसी तरह से "कानून बनाने" के खिलाफ आगाह किया है , जिस तरह से विधानमंडल कानून बनाता है और उन्होंने कुछ मामलों के संदर्भ में देखा कि अदालत द्वारा निर्धारित दिशानिर्देश, और विधायिका की तरह कानून बनाने में कभी-कभी यथार्थवादी न्यायिक सीमा को पार कर जाते हैं। "निर्देश या तो कानून में कमियों को भरने के लिए या उन मामलों के लिए जारी किए जाते हैं जो किसी भी कानून द्वारा प्रदान नहीं किए गए हैं। न्यायालय ने विधायी कार्य को पारंपरिक अंतरालीय अर्थ में नहीं बल्कि एक स्पष्ट तरीके से अपने हाथ में ले लिया है और एक संवैधानिक न्यायालय के रूप में इसकी भूमिका का एक अनिवार्य घटक होने के नाते इसे उचित ठहराया है।" (पृ.242) "सख्त अर्थों में ये न्यायिक अतिवाद के उदाहरण हैं जो शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत के विपरीत हैं। शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत में परिकल्पना की गई है कि मौजूदा कानून के अनुसार विधायिका को कानून बनाना चाहिए, कार्यपालिका को उस पर अमल करना चाहिए चाहिए और न्यायपालिका को विवादों का निपटारा करना चाहिए। वास्तव में ऐसा निर्विवाद पृथक्करण पृथक्करण कहीं मौजूद नहीं है और यह अव्यावहारिक है। मोटे तौर पर , इसका मतलब है कि राज्य के एक अंग को वह कार्य नहीं करना चाहिए जो अनिवार्य रूप से दूसरे अंग से संबंधित है। जबकि खुली-बनावट वाली अभिव्यक्तियों के अर्थ जैसे 'कानून की उचित प्रक्रिया', 'कानून की समान सुरक्षा', या 'भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता ' की व्याख्या और विस्तार के माध्यम से कानून का निर्माण एक वैध न्यायिक कार्य है, निर्देशों के माध्यम से पूरी तरह से एक नया कानून बनाना वैध न्यायिक कार्य नहीं है।" (पृ.250).

परिसीमा की अवधि निर्धारित करना जिसके अंत में विचारण न्यायालय कार्यवाही को समाप्त करने और आवश्यक रूप से अभियुक्त को दोषमुक्त करने या आरोपमुक्त करने के लिए बाध्य होगा, और इसके अलावा, ऐसे निर्देशों को वर्तमान और भविष्य के सभी मामलों पर लागू करना कानून के समान है, जो हमारी राय में , यह न्यायिक निर्देशों द्वारा और संवैधानिक न्यायालयों को उपलब्ध न्यायिक कानून बनाने की शक्ति के क्षेत्र में नहीं किया जा सकता है , भले ही हम संविधान के अनुच्छेद 32, 21, 141 और 142 की कितनी भी उदारतापूर्वक व्याख्या कर लें। विभाजन रेखा ठीक है, लेकिन बोधगम्य है। अदालतें कानून की घोषणा कर सकती हैं, वे कानून की व्याख्या कर सकती हैं, वे स्पष्ट कमियों को दूर कर सकती हैं और कमियों को भर सकती हैं लेकिन वे विधायिका के लिए

लिए उचित रूप से बनाए गए कानून के क्षेत्र में आगे नहीं बढ़ सकती हैं। कानून को लागू करने के लिए बाध्यकारी निर्देश जारी किए जा सकते हैं और न्यायालय के संज्ञान में लाए गए तथ्यों जिसमें किसी दिए गए मामले या मामलों में किए गए अन्याय को मुक्ति दिलाने या अधिकारों के उल्लंघन को रोकने के लिए की जाने वाली कार्यवाही के लिए समय सीमा निर्धारित करना या एक कैलेंडर तैयार करने के लिए उचित निर्देश जारी किए जा सकते हैं न्यायपालिका के लिए ऐसा करना अनुमत अनुमत है, लेकिन यह विधायिका की तरह दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 के अध्याय XXXVI के समान समान या उसकी तर्ज पर कोई प्रावधान नहीं बना सकता है।

कॉमन कॉज़ (I), *कॉमन कॉज़* (II) *और राज देव शर्मा* (I) *और राज देव शर्मा* (II) में अधिनियमित परिसीमा परिबन्ध को कायम नहीं रखा जा सकने का दूसरा कारण यह है कि ये निर्णय निर्णय दो या तीन-न्यायाधीशों की बेंच के निर्णयों के बावजूद *एआर अंतुले* के मामले में संविधान पीठ के आदेश के विपरीत हैं और इसलिए उन्हें उस हद तक अच्छा कानून नहीं कहा जा सकता , जिस हद तक वे मिसाल के सिद्धांत का उल्लंघन करते हैं। मिसालों का सुस्थापित सिद्धांत जो कानून कानून के नियम में बदल गया है , वह यह है कि कम संख्या वाली पीठ अधिक संख्या वाली पीठ द्वारा व्यक्त किए गए विचार से बंधी होती है और उससे हटकर या संघर्ष में कोई विचार नहीं कर सकती है। हमने इस फैसले के पहले भाग में *एआर अंतुले* के मामले से अंश निकाले और पुन : प्रस्तुत किए हैं। संविधान पीठ ने शीघ्र सुनवाई के अधिकार के समर्थकों की समय -सीमा निर्धारित करने की उस आग्रहपूर्ण दलील को खारिज कर दिया , जिसके बाद कोई आपराधिक कार्यवाही या मुकदमा आगे नहीं बढ़ सकेगा और स्पष्ट रूप से फैसला सुनाया कि अपराधों की सुनवाई के लिए कोई समय-सीमा तय करना न तो उचित था और इसलिए न्यायिक रूप से संभव नहीं है और न ही ही व्यावहारिक। संविधान के अनुच्छेद 21 से प्राप्त त्वरित सुनवाई के अधिकार के बारे में कानून की व्याख्या को रिकॉर्ड में रखते हुए इस न्यायालय ने माना कि नियम को लचीला छोड़ना आवश्यक है, न कि इसे परिभाषित और कठोर नियमों के दायरे में तय करना। किसी दिए गए मामले की परिस्थितियों की समग्रता से यह पता लगाने के लिए किसी व्यक्तिगत मामले को जब्त करने वाले न्यायालय के न्यायिक विवेक पर छोड़ दिया जाना चाहिए कि क्या किसी दिए गए समय नियत अवधि अवधि तक उपभोग किया गया समय अनुच्छेद 21 का उल्लंघन है, और यदि ऐसा है तो, फिर किसी किसी कार्यवाही को समाप्त करने दे और यदि नहीं, तो आगे बढ़े। परीक्षण यह है कि क्या कार्यवाही या मुकदमा इतने लंबे समय तक लंबित रहा है कि अत्यधिक देरी को वैध रूप से दमनकारी और अनुचित कहा जा सकता है, जैसा कि एआर अंतुले में सुझाव दिया गया है। करतार सिंह के मामले (सुप्रा) में संविधान पीठ ने इस सिद्धांत को मान्यता देते हुए कहा कि किसी अभियुक्त को त्वरित सुनवाई के अधिकार से वंचित करने पर अभियोग को खारिज करने या दोषसिद्धि को पलटने का निर्णय हो सकता है, उसने आगे कहा, "बेशक, इस सिद्धांत के तहत जांच से गुजरने के लिए कोई

भी समय अवधि अपने आप में पर्याप्त नहीं है और न ही अभियुक्त को मामलों के निपटान में देरी करके वास्तविक पूर्वाग्रह दिखाने के लिए कहा जाता है। दूसरी ओर, अदालत को इस पर ध्यान देते हुए एक संतुलित दुष्टिकोण अपनाते हुए टाले जा सकने वाले विलंब से अभियुक्त को होने वाले संभावित पूर्वाग्रहों और नुकसानों का पता लगाना और यह निर्धारित करना होगा कि क्या किसी आपराधिक कार्यवाही में अभियुक्त को अनुचित विलंब के साथ त्वरित सुनवाई के अधिकार से वंचित किया गया है जिसे (1) विलंब की लंबाई (2) देरी का औचित्य, (3) अभियुक्त का त्वरित सुनवाई के के अपने अधिकार का दावा, और (4) ऐसी देरी से अभियुक्त के प्रति होने वाला पूर्वाग्रह जैसे कारको से निर्धारित किया जा सकता है।" (पैरा 92).

उपरोक्त सभी कारणों से, हमारी राय है कि *कॉमन कॉज़ (I)* (जैसा कि *कॉमन कॉज़ (II)* में संशोधित) और *राज देव शर्मा (I) और (II)* में, न्यायालय परिसीमा की अवधि निर्धारित नहीं कर सकता था जिसके आगे किसी आपराधिक मामले की सुनवाई या आपराधिक कार्यवाही जारी नहीं रह सकती है और अभियुक्त को बरी करने या आरोपमुक्त करने के आदेश के बाद इसे अनिवार्य रूप से बंद कर दिया जाना चाहिए, निष्कर्ष में हम मानते हैं:-

(1) एआर अंतुले के मामले में आदेश सही है और अभी भी कायम है।

(2) संविधान के अनुच्छेद 21 से उभरने वाले प्रस्ताव और त्वरित सुनवाई के अधिकार की व्याख्या करते हुए *एआर अंतुले* के मामले में जारी दिशानिर्देश , त्वरित सुनवाई के अधिकार का पर्याप्त ध्यान रखते हैं। हम उक्त प्रस्तावों का समर्थन करते हैं और इसकी पुनः पुष्टि करते हैं।

(3) *एआर अंतुले* के मामले में निर्धारित दिशानिर्देश संपूर्ण नहीं हैं बल्कि केवल उदाहरणात्मक हैं। उनका उद्देश्य कठोर अपरिवर्तनीय नियमों के रूप में या स्ट्रेट-जैकेट फॉर्मूले की तरह लागू किया जाना नहीं है। उनकी प्रयोज्यता प्रत्येक मामले की तथ्य -स्थिति पर निर्भर करेगी। सभी स्थितियों का पूर्वाभास करना कठिन है और कोई सामान्यीकरण नहीं किया जा सकता है।

(4) सभी आपराधिक कार्यवाहियों के समापन के लिए कोई बाहरी सीमा निर्धारित करना न तो उचित है न ही व्यवहार्य है और न ही न्यायिक रूप से स्वीकार्य है। *कॉमन कॉज* (I), *राज देव शर्मा शर्मा* (I) और *राज देव शर्मा* (II) दिए गए कई निर्देशों में निर्धारित समय -सीमाएं या अवधि निर्धारित या तय नहीं की जा सकती थीं और ये अच्छे कानून नहीं हैं। जैसा कि *कॉमन कॉज़ केस (I), राज देव शर्मा केस (I)* और *(II)* में दिए गए निर्देशों द्वारा निर्धारित किया गया है , आपराधिक अदालतें केवल समय व्यतीत होने के आधार पर मुकदमे या आपराधिक कार्यवाही को समाप्त करने के लिए बाध्य नहीं हैं। अधिक से अधिक उन निर्णयों में निर्धारित समय की अवधि को को मुकदमे या कार्यवाही किए जाने वाली अदालतों द्वारा अनुस्मारक के रूप में कार्य करने के लिए लिया जा सकता है जिन्हें वह उनके सामने मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर लागू करने और

निर्धारित करने के लिए *एआर अंतुले* के मामले में बताए गए कई प्रासंगिक कारकों को ध्यान में रखते हुए अपने न्यायिक मस्तिष्क का प्रयोग कर निर्णय लें कि क्या मुकदमे या कार्यवाही में इतनी इतनी देरी हो गई है कि इसे दमनकारी और अनुचित कहा जा सकता है। ऐसी समय -सीमाओं को किसी भी न्यायालय द्वारा मुकदमे या कार्यवाही को आगे जारी रखने में बाधा के रूप में नहीं माना जा सकता है और न ही अनिवार्य रूप से अदालत को उससे उक्त मुकदमे या कार्यवाही को समाप्त करने और अभियुक्तों को दोषमुक्त करने या आरोपमुक्त करने के लिए बाध्य माना जाएगा।

(5) त्वरित सुनवाई के अधिकार को प्रभावी बनाने के लिए आपराधिक न्यायालयों को दण्ड प्रक्रिया प्रक्रिया संहिता की धारा 309 , 311 और 258 के तहत अपनी उपलब्ध शक्तियों का प्रयोग करना चाहिए। एक सतर्क और मेहनती विचारण जज किसी भी दिशानिर्देश की तुलना में ऐसे अधिकार का बेहतर रक्षक साबित हो सकता है। उपयुक्त मामलों में सीआरपीसी की धारा 482 और संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के तहत उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का इस्तेमाल उचित राहत या उपयुक्त निर्देशों की मांग के लिए किया जा सकता है।

(6) यह भारत संघ और राज्य सरकारों को अपेक्षित धन, जनशक्ति और बुनियादी ढांचा प्रदान करके न्यायपालिका को मात्रात्मक और गुणात्मक रूप से मजबूत करने के उनके संवैधानिक दायित्व दायित्व की याद दिलाने का एक उपयुक्त अवसर है। हमें आशा और विश्वास है कि सरकारें कार्रवाई करेंगी।

हम उपर्युक्त शर्तों में 19 सितंबर 2000 और 26 अप्रैल, 2001 के संदर्भ आदेशों में पूछे गए प्रश्नों का उत्तर देते हैं।

अपीलें स्वीकार की जाती हैं। उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णयों को निरस्त किया जाता है। चूंकि उच्च न्यायालय अपील दायर करने में देरी को माफ नहीं कर सकता था और फिर उच्च न्यायालय के समक्ष संबंधित आरोपी/ प्रत्यर्थियों को नोटिस जारी किए बिना अपीलों को स्वीकार नहीं नहीं कर सकता था, अब उच्च न्यायालय प्रत्येक अपील में पहले आरोपी / प्रत्यर्थी को नोटिस जारी करने के बाद और यहां और यहां ऊपर निर्धारित कानून के सिद्धांतों के अनुरूप अपीलो पर नए सिरे से सुनवाई करेगा और निर्णय लेगा।

हम इसे पूर्ण करने से पूर्व, हम ex abundanti cautela के संबंध में कुछ टिप्पणियाँ करना चाहेंगे:

सर्वप्रथम, हमने मामलों की सुनवाई के संबंध में *कॉमन कॉज़ केस- I और II और राज देव शर्मा केस I और II* में इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्देशों पर विचार किया है। उन मामलों में आरोपी व्यक्तियों को जमानत पर रिहा करने के संबंध में दिए गए निर्देश इस संदर्भ या इन

का विषय नहीं हैं और हमने जानबूझकर जमानत के संबंध में निर्देशों की वैधता , औचित्य या अन्यथा से स्वयं को अलग रखा है। ऐसा इसलिए है क्योंकि किसी मुकदमे या कार्यवाही को समाप्त करने या उससे के दौरान और अभियुक्त के जमानत पर रिहा होने के अधिकार से निपटने के दौरान आपराधिक अदालतों के सामने अलग-अलग विचार उठते हैं।

दूसरे, यद्यपि हम संदर्भित मामलों में इस न्यायालय की क्रमशः दो और तीन न्यायाधीशों की पीठों द्वारा दिए गए निर्देशों को हटा रहे हैं , जिनके कारण हम पहले ही बता चुके हैं , एक पल के लिए भी यह नहीं माना जाना चाहिए कि हमने किसी भी प्राधिकारी या अदालत के समक्ष किसी भी प्रकृति की और किसी भी चरण की आपराधिक कार्यवाही की शीघ्र सुनवाई और शीघ्र समापन के संबंध में कानून से प्रस्थान कर लिया है।। त्वरित न्याय देना राज्य का संवैधानिक दायित्व है, विशेष विशेष रूप से आपराधिक कानून के क्षेत्र में, और धन या संसाधनों की कमी संविधान के अनुच्छेद 21, 19 और 14 और प्रस्तावना और राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों से भी से उत्पन्न न्याय के अधिकार से इनकार करने का कोई बचाव नहीं है। अब समय आ गया है कि भारत संघ और विभिन्न विभिन्न राज्य अपने संवैधानिक दायित्व को समझें और न्याय वितरण प्रणाली को मजबूत करने की की दिशा में कुछ ठोस करें। हमें सभी संबंधित पक्षों को इस न्यायालय ने *हुसैनारा खातून (IV) 1980 (1) SCC 98* में जो कहा था, वह याद दिलाने की आवश्यकता है, "राज्य को इस आधार पर अभियुक्तों को त्वरित सुनवाई के संवैधानिक अधिकार से वंचित करने की अनुमति नहीं दी जा सकती सकती है कि राज्य के पास त्वरित सुनवाई सुनिश्चित करने की दृष्टि से प्रशासनिक और न्यायिक तंत्र में सुधार के लिए आवश्यक व्यय करने के लिए पर्याप्त वित्तीय संसाधन नहीं हैं। राज्य की अपनी अपनी वित्तीय बाधाएं और व्यय में अपनी प्राथमिकताएं हो सकती हैं लेकिन 'कानून किसी भी सरकार सरकार को उसके नागरिकों को गरीबी , या प्रशासनिक अक्षमता की दलील पर संवैधानिक अधिकार प्राप्त करने से वंचित करने की अनुमति नहीं देता है।"

तीसरा, परिसीमा प्रतिबन्ध को दो आधारों पर हटा रहे हैं कि यह न्यायिक कानून के बराबर है, जो स्वीकार्य नहीं है , और क्योंकि वे बाध्यकारी मिसालों के सिद्धांत के विपरीत हैं। विशेष रूप से संविधान के अनुच्छेद 32, 141, 142 और 144 के संदर्भ में , सार्वजनिक हित में या सामाजिक कार्रवाई मुकदमों में आदेश पारित करने और निर्देश जारी करने की इस अदालत की शक्तियों का बड़ा प्रश्न हमारे और इस संदर्भ का विषय नहीं है और इस निर्णय को संविधान के इन अनुच्छेदों की व्याख्या और इस न्यायालय द्वारा इनके अन्तर्गत प्रयोग की जाने वाली शक्तियों के दायरे को निर्धारित, परिभाषित या सीमित करने के रूप में नहीं पढ़ा जाना चाहिए।

और अंत में, यह स्पष्ट किया जाता है कि यह निर्णय ऐसे किसी मामलेजिनमें 'कॉमन कॉज़' कॉज़' और 'राज देव शर्मा' मामलों के आधार पर पहले ही अन्तिम निर्णय लिया जा चुका है , को

पुनः खोलने अथवा ऐसे किसी भी दोषमुक्ति या उन्मोचन को रद्द करके आगे बढ़ने और आरोपियों के खिलाफ फिर से विचारण प्रारम्भ करने का आधार नहीं होगा।

राजू, जे. मुझे सम्मानित और विद्वान भाई आर. सी. लाहोटी, जे. के निर्णय से गुजरने का सौभाग्य मिला है, जबकि मैं सम्मानपूर्ण सहमत हूं कि अपीलों को अनुमति दी जानी चाहिए और उच्च न्यायालय को प्रेषित किया जाना चाहिए। सुनवाई और नए सिरे से निर्णय लेने के लिए मैं इस इस न्यायालय की शक्तियों और अधिकार क्षेत्र से संबंधित उसमें निहित कुछ टिप्पणियों को स्वीकार स्वीकार करने में अपनी आपत्ति और असमर्थता व्यक्त करने के लिए मजबूर महसूस करता हूं।

इस न्यायालय के पाँच विद्वान न्यायाधीशों की संविधान पीठ द्वारा ए . आर. अंतुले [1992] 1 एस. सी. सी. 225 के मामले में की गई कानून की घोषणा के निर्णय में इस न्यायालय के न्यायाधीश अभी भी कायम हैं और इसके बाध्यकारी बल और अधिकार को किसी उच्च पीठ के अन्य निर्णय द्वारा किसी भी तरह से कम नहीं किया गया है और न ही बदला गया है। नतीजतन, न्यायाधीशों के संविधान की कम संख्या वाली पीठें जो "कॉमन कॉज ए रेगुलेशन" में रिपोर्ट किए गए मामलों से निपटती थीं , निदेशक द्वारा पंजीकृत सोसाइटी बनाम भारत संघ और अन्य , [ ] 4 एस. सी. सी. 33]; निदेशक द्वारा पंजीकृत सोसाइटी बनाम भारत संघ और अन्य, [1996] 6 एस. सी. सी. 775]; राज देव शर्मा बनाम बिहार राज्य , [1998] 7 एस. सी. सी. 507] और राज देव शर्मा (II) बनाम बिहार राज्य, [1999] 7 एस. सी. सी. 604 अनुपात के अवमूल्यन में कोई सिद्धांत निर्धारित नहीं कर सकता था। ए आर. अंतुले के मामले (उपर्युक्त) में या तो विस्तार विस्तार स्पष्टीकरण के माध्यम से या उसमें विचार किए गए कारणों की प्रकृति या उसके बाद होने वाले परिणामों के संदर्भ में अंतर करने की कोशिश करने की प्रक्रिया में निर्धारित किया गया है और और जो उनके विचार में टालने योग्य हैं। यहां तक कि जहां इसके लिए आवश्यकताएं या औचित्य , यदि कोई हो , पाए जाते हैं , तो बाध्यकारी पूर्वजों के सिद्धांत का उल्लंघन करने के लिए ऐसी स्वतंत्रताओं के लिए गुंजाइश नहीं हो सकती थी, जो न्याय के प्रशासन के हमारे तरीके में दृढ़ता से बनी हुई है और जो परिस्थितियों में भी अनुमेय है , केवल इस अदालत की एक उच्च पीठ द्वारा पुनर्विचार के लिए संदर्भित किया गया था और किसी अन्य माध्यम से विचलित नहीं होना था। यह एकमात्र कारण उपरोक्त निर्णयों को निरस्त करने के लिए पर्याप्त होगा , जिनकी शुद्धता इस पीठ विचार के लिए निर्दिष्ट की गई है। इससे भी अधिक जब ए . आर. अंतुले के मामले (उपर्युक्त) में निर्णय की शुद्धता पर संदेह करने का कोई कारण नहीं है और यह पीठ उसमें निर्धारित सिद्धांतों सहमत है।

हालाँकि यह न्यायालय खुद को इम्पेरियों में एक साम्राज्य नहीं मानता है या 'राज्य' की एक निरंकुश शाखा के रूप में कार्य करेगा , यह तथ्य कि हमारे संविधान के संस्थापकों ने सोच विचार कर और विमर्श पूर्वक शायद, इस न्यायालय पर किसी भी क्षेत्राधिकार प्रतिबंध को लागू करने करने की परिकल्पना नहीं की थी , सिवाय भारत के संविधान के अनुच्छेद 363 के, मेरे विचार में, इसकी शक्तियों की गहनता और आयाम या सीमा की पहचान करने के लिए महत्वपूर्ण और पर्याप्त है। किसी मामले पर विचार करने/ निपटने के लिए शक्तियों या अधिकार क्षेत्र के प्रयोग पर तैयार

समझी गई अन्य बाधाएं केवल उसके लिए निर्दिष्ट किसी एक या अन्य कारण से स्वयं लगाए गए थे और वे किसी भी तरीके से इस न्यायालय के समक्ष अवरोध उतपन्न नहीं कर सकते थे या उसे रोक नहीं सकते थे। जब भी आवश्यक हो किसी भी स्थिति में प्रतिक्रिया देने के लिए उठना और संविधान को बदलती परिस्थितियों और स्थायी मूल्यों के साथ संविधान को संरक्षित करने और मौलिक मौलिक अधिकारों की रक्षाकरने और लागू करने के लिए 'प्रहरी' के रूप में प्रभावी ढंग से संविधान को को समायोजित करने में प्रभावी ढंग से अपनी भूमिका निभाना अन्य संवैधानिक आदेश जो लोगों के के अनुल्लंघनीय अधिकारों के साथ-साथ उन विशेषताओं का भी गठन करते हैं जिन्होंने इसकी मूल संरचना का भी गठन किया और किसी भी बाद के संवैधानिक संशोधन की पहुंच से भी परे मानी जाती है। वास्तव में मेरे विचार में यह न्यायालय देश में राष्ट्रीय स्तर पर सभी न्यायिक शक्तियों अंतिम भंडार है यह प्रशासन की पिरामिडल ऊंचाई पर शिखर न्यायालय होने के नाते देश में न्याय और इसके समर्थक और अंतिम व्याख्याकार के रूप में भारत का संविधान और 'कानून के शासन' के मूल सिद्धांतों का रक्षक है।

भविष्य में उत्पन्न होने वाली सभी संभावित स्थितियों का पूर्वानुमान लगाया और गणना गणना करना, सार्वभौमिक अनुप्रयोग हेतु अग्रिम समाधान प्रदान करने के लिए कोई भी पक्का नियम नियम बनाना न केवल कठिन है , अपितु असम्भव है। यह सर्वविदित है कि जहां अधिकार है, वहां समाधान है। किन अपवादात्मक मामलों में , जोकि आम तौर पर कानून द्वारा कल्पना करना या प्रत्याशित नहीं है किस प्रकार का असाधारण उपाय उत्पन्न होने वाली समस्या का हल करने क लिए लिए तैयार या डिजाइन किया जाना चाहिए। यह स्थिति की गंभीरता , उल्लंघन की प्रकृति और प्रभावकारिता के साथ-साथ मौजूदा मशीनरी की उपयोगिता और किसी भी व्यक्ति को अपूर्णीय क्षति मोचन से परे किसी भी परिणामी क्षति को रोकने के लिए सामान्य ढांचे या उपचार के रास्ते के बाहर बाहर भी समाधान खोजने की अनिवार्य आवश्यकता या आवश्यकता पर निर्भर करता है। जाहिरा तौर पर, मेरे विचार में, ऐसी संभावनाओं को ध्यान में रखते हुए केवल *ए. आर. अंतुले* के मामले (उपरोक्त) में इस न्यायालय ने अपराधों के विचारण के लिए किसी भी समय सीमा के निर्धारण के अनुरोध को अस्वीकार करने का विकल्प चुना है , जो इस न्यायालय में किसी भी पूर्ण अभाव या अधिकार क्षेत्र की कमी पर आधारित नहीं है , लेकिन इस कारण से कि ऐसी कोई समय सीमा निर्धारित करना "न तो उचित है और न ही व्यावहारिक " है और यह कि गैर -निर्धारण त्वरित सुनवाई के अधिकार की गारंटी को अप्रभावी नहीं करता है। उपलब्ध प्रक्रियात्मक सुरक्षा उपायों और राहत प्राप्त करने के लिए प्रदान किए गए मार्गों के भीतर भी त्वरित सुनवाई के वांछित उद्देश्य को प्राप्त करने की संभावना और गुंजाइश , उक्त निर्णय के साथ -साथ विद्वान भाई/ अग्रज न्यायमूर्ति आर. सी. लाहोटी, द्वारा तैयार किए गए निर्णय में भी इंगित की गई है। मेरी दृढ़ राय है कि इस न्यायालय को कभी भी किसी भी क्षेत्र में या किसी भी मामले के संबंध में या किसी एक प्राधिकरण या व्यक्ति पर अपनी अधिकारिता को अस्वीकार करने का जोखिम नहीं लेना चाहिए , जब संविधान दांव पर लगा हुआ पाया जाता है और नागरिकों / व्यक्तियों के मौलिक अधिकार खतरे में होते हैं , उन्हें अपने पद पर बहाल करने और संविधान और विधि के शासन को बनाए रखने के लिए। जिसके जिसके लिए व्यक्त व निहित दोनों प्रकार से , उचित प्रधानता व आवश्यक शक्तियों , अधिकार व क्षेत्राधिकार के साथ इस न्यायालय की स्थापना और गठन किया गया है।

व्यक्त की गई कुछ टिप्पणियों जोकि मात्र न्यायालय की अधिकारिता के सम्बन्ध में संशय व्यक्त करते हुए की गई है , उपरोक्त वर्णित कारणों से, मैं खुद को अलग करता हूं। मैं निर्णय के अन्य कारणों और निष्कर्षों से सहमत हूं।

अपीलों की अनुमति दी गई।